दमयंती

(संपूर्ण मौलिक नाटक)

राधावल्लभ त्रिपाठी

दमयंती

एक संपूर्ण मौलिक नाटक

साहित्य कला परिषद्, दिल्ली द्वारा पुरस्कृत
तथा ब० व० कारंत के निर्देशन में
दिल्ली, मैसूर आदि नगरों में
अनेक बार प्रस्तुत

लेखक
राधावल्लभ त्रिपाठी

प्रकाशक
नाट्य परिषद्
C-24, गौरनगर
सागर-470 003 (म० प्र०)

प्रथम संस्करण 1991

© राधावल्लभ त्रिपाठी

मूल्य : चालीस रुपया

मुद्रक :
एकेडेमी प्रेस, इलाहाबाद

DAMAYANTI—A full length Original play in Hindi awarded by Sahitya Kala Parishad, Delhi and staged under the Direction of Shri B. V. Karanth a number of times. Pub. by Natya Parishad, C-24 Gour Nagar, Sagar—470 003—First Edn. 1991 Price Rs 40/—

दमयंती

पात्र

सूत्रधार, नल, बाहुक, इंद्र, अग्नि, वरुण, यम, कलियुग, पुष्कर, बाभ्रव्य, वार्ष्णेय, ऋतुपर्ण, अमात्य, प्रहरी, पुरोहित, तीन चांडाल-पुरुष, तीन गायक, व्याध, चेट, प्रजाजन ।

दमयंती, तीन चांडाल स्त्रियाँ, मधुकरिका, वकुलावलिका, रदनिका, बृहत्सेना, मल्लिका, प्रतीहारी, महारानी, केशिनी, चर्चरी (समूह) ।

●

नाट्ययुक्तियाँ—आकाशभाषित में मोनोलाग शैली में, नेपथ्य से आये उत्तर को सुनने का अभिनय कर रंगमंच पर खड़ा पात्र प्रश्न और उत्तर दोनों प्रस्तुत करेगा ।

जनांतिक—दो पात्रों की शेष पात्रों से छिपा कर आपस में बातचीत ।

●

ध्रुवाएँ—प्रावेशिकी ध्रुवा पात्र के प्रवेश के समय मध्यलय में, नैष्क्रामिकी पात्र के प्रस्थान के समय विलंबित या मध्य लय में, आक्षेपिकी आने वाली घटना की सूचना आदि के लिये द्रुत लय में प्रेक्षकों के लिये नाट्यवस्तु या भाव की व्याख्यार्थ या रसांतर के लिये प्रासादिकी मध्य या विलंबित लय में तथा नाट्कीय द्वंद्व या अंतराल के क्षण में विलंबित लय में आंतरा ध्रूवा गायी जायेगी । **चर्चरी**—नृत्य तथा समूहगान ।

पहला अंक

(सूत्रधार प्रवेश कर नांदी-पाठ करता है।)

वृद्धि हो इस राष्ट्र की आशा सभी की पूर्ण हो
सृष्टि वह आनंद की जग में सदा संपूर्ण हो।
धरती सदा फूले फले ऊपर विमल आकाश हो
सज्जन रहें निर्भय सदा वे दुर्जनों का नाश हो।

सूत्र० : नांदी-पाठ करते हुए मेरे हाथ क्यों काँप रहे हैं ? बड़ी घबराहट लग रही है। क्या करूँ ? नटी को बुलाऊँ ? यही करता हूँ। (पीछे देख कर पुकारता हुआ) —अजी सुनती हो, ?

(नेपथ्य से—'क्या है ?')

सूत्र० : तनिक इधर तो आओ !

(झुँझलायी हुई नटी का प्रवेश)

नटी : अब क्या हुआ ? इधर अभिनेताओं का प्रसाधन पूरा नहीं हुआ और आप अलग बीच-बीच में परेशान करते हैं। जो कहना हो जल्दी कहिये, बहुत काम निपटाना है अभी—

सूत्र० : कुछ नहीं···बात यह है कि मुझे घबराहट लग रही थी···

नटी : क्या ? इतनी सी बात ! उँह ! बिना मतलब के परेशान कर दिया। नाटक शुरू होने के पहले आप हमेशा नरवस रहते ही हैं।

(जाने लगती है ।)

सूत्र० : (व्यग्र भाव से रोकता हुआ)—सुनो तो ! सुनो तो ! यह उस तरह की नरवसनेस नहीं है प्रिये !

नटी : (रुक कर)—फिर क्या है ?

सूत्र० : मुझे डर लग रहा है बड़ा अजीब सा डर !

नटी : किस चीज का ?

सूत्र० : कलियुग का ।

नटी : (आश्चर्य और चिढ़ के साथ)—कलियुग का ? दिमाग तो नहीं चल गया आपका ? वह भी इस बखत—नाटक शुरू होने के पहले—!

सूत्र० : नहीं प्रिये ! मुझे लगता है कलियुग बड़ा खतरनाक है भ्रष्ट नेता की तरह। और वह आ रहा है ।

नटी : आ रहा है ?

(नेपथ्य से गड़गड़ाहट की ध्वनि)

सूत्र० : सुन रही हो ? यह शोर । वह सचमुच इधर ही आ रहा है ।

[नेपथ्य से कलियुग की प्रावेशिकी ध्रुवा गायी जाती है । सूत्रधार और नटी स्तब्ध खड़े रह जाते हैं ।]

धर्मग्रंथ सब दूर हुए अति कर्म विचित्र हुए लोगों के
देव हुए निस्तेज निरंतर फैले पाप, ताप रोगों के

ऐसी अशुभ घड़ी आयी देखो दुखदायी
एक अमंगल की काली छाया मँडरायी ।

कलियुग का यह अवतार हुआ
दुख ने सुख ने फिर हमें छुआ ।

ध्रुवा समाप्त होते ही कलियुग तेजी से प्रवेश करता है । वह बौना और काले रंग का है, फटे कपड़े पहने है, केश अस्त-व्यस्त हैं । मंच पर बैचेनी से लगातार तेज चक्कर लगाता है ।]

सूत्र० : (नटी के साथ सहम कर पीछे हटते हुए)—आ ही गया !

नटी : (डरे स्वर में)—यह है कौन ?

सूत्र० : यही तो कलियुग है । लगता है बड़ी जल्दी है इसे कहीं पहुँचने की ।

नटी : इसे तो हमेशा जल्दी रहती ही है ।

सूत्र० : भय तो लगता है इससे बात करने में। फिर भी पूछ कर देखूं बात क्या है ? (पुकार कर)—अरे भाई कलियुग जी ? क्या बात है—ऐसी हड़बड़ी में कहाँ चले ? रुकिये तो !—

कलि० : अभी हमें मत रोक सूत्रधार ! समय नहीं है हमारे पास।

सूत्र० : हमसे बात करने का एक पल के लिये भी समय नहीं ?

कलि० : नहीं। हमें दमयंती के स्वयंवर में पहुँचना है तुरंत ! (तेजी से आगे बढ़ जाता है।)

नटी : बाप रे यह तो बड़ा तेज है।

सूत्र० : (पुकार कर)—रुकिये, रुकिये तो ! दमयंती का स्वयंवर तो हो चुका ? (कलियुग न सुन कर चला जाता है।) चला गया। कलयुग है ही ऐसी तेज चाल वाला। वह किसी की न सुनेगा, अपने मन की ही करेगा।

नटी : क्या कह रहे थे आप ? क्या सचमुच दमयंती का स्वयंवर हो चुका ?

सूत्र० : और नहीं तो क्या ! देख नहीं रही हो उधर—ये देवता स्वयंवर से ही तो वापस लौट रहे हैं—इंद्र, अग्नि, वरुण और यम। आओ चलें, हम भी अपना काम निपटायें।

[दोनों का प्रस्थान। देवताओं की प्रावेशिकी ध्रुवा गायी जाती है।]

हुआ स्वयंवर दमयंती का
रचा ब्याह फिर दमयंती का
रहे देखते खिन्न देवता
रहे रिक्त के रिक्त देवता
दमयंती ने वरा एक नर
दमयंती का हुआ स्वयंवर
नर ने चाहा दमयन्ती को
दमयंती को, दमयंती को
दमयंती ने उसे ही वरा
वापस लौटे चार देवता···

[एक से मुखौटे पहने हुए इंद्र, अग्नि, वरुण और यम का प्रवेश]

इंद्र : हाँ, हम बस देखते ही रह गये।

अग्नि : हम निस्तेज हो गये !

वरुण : हमारे देखते-देखते—

यम : दमयंती नल की हो गयी !

[दूसरी दिशा से कलियुग का पुनः प्रवेश]

इंद्र : देखो ! यह कलियुग किधर चला !

चारों देव कलियुग की ओर तीन कदम बढ़ते हैं ।

अग्नि : कलियुग ! तुम किधर चले ?

वरुण : बड़ी त्वरा में जल्दी में लगते हो भाई ?

यम : अपने स्वभाव के अनुरूप !

[चारों फीकी हँसी हँसते हैं । कलियुग बिना सुने आगे बढ़ता जाता है ।]

इंद्र : रुक जाओ कलियुग, रुक जाओ ! मैं देवराज इंद्र तुमसे रुकने का अनुरोध करता हूँ !

अग्नि : रुक जाओ कलियुग ! मैं अग्नि तुमसे रुकने का अनुरोध करता हूँ—

वरुण : अपनी यह तीव्र गति रोक लो कलियुग ! मैं जल का देवता वरुण तुम्हें आदेश देता हूँ ।

यम : ठहर जा कलियुग ! मैं मृत्यु का देवता यम तुझे पुकार रहा हूँ !

कलियुग : मुझे मत रोको देवताओं ! मैं सचमुच इस समय बड़ी जल्दी में हूँ !

इंद्र : पर बताते तो जाओ जा कहाँ रहे हो ?

कलियुग : अरे तुम लोगों को पता नहीं क्या ? दमयंती का स्वयंवर है देवताओं ! दमयंती···मैं उसे चाहता हूँ— आज वह मुझे वरेगी !

[देवता खिलखिलाकर हँसते हैं ।]

कलियुग : (चिढ़कर)—हँसते क्या हो तुम लोग ? क्या समझते हो तुम लोग कि दमयंती मुझे नहीं वरेगी ? देवता फिर हँसते हैं ।

कलियुग : हँसते रहो ! हँसते रहो ! तुम्हारी हँसी की परवाह मैं क्यों करूँ ? जा रहा हूँ मैं !

[फिर द्रुत गति से चल पड़ता है ।]

इंद्र : कलियुग ! रुक जाओ ! दमयंती को पाने का विचार छोड़ दो !

कसियुग : (सहसा रुक कर क्रुद्ध स्वर में)—क्यों, ईर्ष्या हो रही है तुम्हें मुझसे ? उसे पाने का विचार छोड़ दूँ मैं ? मैं उसे पाने के लिये जल रहा हूँ—

अपने भीतर—धगमगाती ज्वाला में ! आज वह मेरे भीतर की इस ज्वाला को पहचानेगी । आज वह मुझे वरेगी···

[देवता फिर हँसते हैं । कलियुग द्रुतगति से फिर मंच पर परिक्रमा करता है ।]

इंद्र : ठहरो कलियुग । आवश्यक बात है । नहीं सुनोगे, तो पछताओगे ।

कलियुग : (व्यग्र भाव से रुक कर, झल्लाये स्वर में)—क्या है ? क्या बात आ गयी ऐसी—वह भी इस समय ? तुरत कहो ! समय नहीं है मेरे पास ।

यम : तुम्हारे पास समय रहता ही कब है ?

कलियुग : बस, बस, अधिक बातें मत बनाओ । मैं जानता हूँ तुम लोग समय की अनंतता में जीते हो । तुम्हारे पास समय ही समय है—और हो भी क्या सकता है तुम देवताओं के पास ! और तुम यम—तुम तो महाकाल के अधिष्ठाता ठहरे । चाहते क्या हो तुम ? मैं तुम्हारी प्रशस्ति करता रहूँ और उधर दमयंती हाथ में वरमाला लिये बैठी रह जाय ? या फिर इसमें तुम लोगों की चाल है—मुझे यहाँ अटकाये रखकर—

अग्नि : (चुहल के भाव से)—तुम्हें पक्का विश्वास है दमयंती तुम्हीं को वरेगी ?

कलि० : क्यों ? क्यों नहीं वरेगी मुझे वह ? मैं उसके लिये सर्वाधिक योग्य नहीं हूँ क्या ?

वरुण : हम लोग समझ रहे थे कि हम भी कुछ-कुछ योग्य हैं दमयंती के लिये—

कलि० : अपनी तुलना मुझ से मत करो तुम लोग ! तुम लोगों का समय बीत चुका—तुम महान् देवों का । और सुनो, यदि तुम लोगों के मन में भी दमयंती को पाने की लालसा हो तो उसे बिल्कुल निकाल दो मन से । भूल जाओ दमयंती को ! वह तुम्हारी तरफ आँख उठा कर देखेगी भी नहीं ।

यम : और तुम में ऐसा क्या है, जो···

कलि० : (बीच में रोक कर)—मुझ में ? जानना चाहते हो ? मुझ में कला है, कौशल है, जिजीविषा है, युयुत्सा है, ? यह सब तुम में है क्या ?

सारे देव : हम देवता हैं । हम निरपेक्ष हैं । हम स्वतः पूर्ण हैं ।

कलि० : फिर दमयंती के लिये क्यों तड़प रहे थे तुम लोग ?

देव : वह हमारी भूल थी। एक मानवी से हमारा संयोग नहीं हो सकता।

कलि० : क्यों कि तुम लोग प्रेम करना नहीं जानते। मैं प्रेम करना जानता हूँ, तुम जानते हो ? मेरे भीतर दमयंती को पाने की आग है, तुम्हारे भीतर है ? मैं कर्म का अधिष्ठाता हूँ, तुम लोग जीते हो निष्क्रियता में। इसलिये तुम लोग मुँह धो रखो। दमयंती आज मेरे कंठ में वरमाला डालेगी।

इंद्र : दमयंती को भूल जाओ मित्र ! वह तो नल की हो चुकी !

कलि० : क्या कहा ?

इंद्र : तुम चूक गये कलियुग ! स्वयंवर तो हो चुका।

कलि० : यह झूठ है।

अग्नि : यह सत्य है कलियुग ! स्वयंवर हो चुका। हम वहीं से आ रहे हैं। हम भी पहुँचे थे दमयंती को पाने के लिये—हम चाहते थे वह हममें से किसी एक को वर ले। पर उसने वरा एक मनुष्य को।

कलि० : (हतप्रभ होकर)—एक मनुष्य को !···वर लिया उसने ?

वरुण : हाँ, निषध देश के राजा नल को।

यम : वह नल को चाहती थी, नल उसे चाहता था।

इंद्र : नल के दोनों पार्श्व में बैठे थे हम लोग—हम चारों के बीच में था वह। दमयंती ने हमें पहचाना, प्रणाम किया, आदर दिया और वर लिया नल को।

कलि० : नल को वर लिया उसने ? और तुम लोग देखते रहे ?

वरुण : हमने अपनी माया का विस्तार किया, पर दमयंती का विवेक जाग्रत था।

अग्नि : विवेक रूपी हंस जो सरस्वती का वाहन है, उसे सही पथ दिखा गया। उसने अपने नल को पहचाना—

[स्मृति दृश्य। मंच पर हल्का अंधकार। चारों देवता एक पंक्ति में खड़े हो जाते हैं, बीच में एक व्यक्ति के लिये स्थान खाली है। नल देवों जैसा मुखौटा पहने इस खाली स्थान पर आकर खड़ा हो जाता है। प्रकाशवृत्त इन पाँचों पर केंद्रित होता है। दमयंती हाथ में वरमाला लिये दो सखियों के साथ प्रवेश करती है। प्रकाशवृत्त पाँचों आकृतियों पर मंदा और दमयंती पर तेज होता है।

दम० : यह क्या ? पाँच आकृतियाँ एक जैसीं ! इनमें मेरे नल कहाँ हैं ?

पहली सखी : देवों ने आपके साथ छल किया भट्टिणी !

दूसरी सखी : इनमें से किसी एक देव को आप वर लीजिये। वही देव महाराज नल में भी तो है।

दम० : पर मैंने तो केवल नल को चाहा है, मैंने उनके मनुष्य से प्रेम किया है, उनके देवता से नहीं। मैं देवता का आदर करती हूँ, उन्हें प्रणाम करती हूँ, पर उनके साथ जीवन तो नहीं बिता सकती !

पहली सखी : देवों ने महाराज नल का रूप बना लिया है। किसी भी देव में आपको अपने नल मिल जायेंगे—

दम० : नहीं ! मुझे देव नहीं, मनुष्य चाहिये।
[हाथ जोड़ कर]—मुझे शक्ति दो माँ सरस्वती ! मैं अपने मनुष्य को पहचान सकूँ, जिसे मैंने हृदय से चाहा है।

[आक्षेपिका ध्रुवा]

देवताओं के नहीं गिरती
पसीने की बूंदें कभी भी
और नहीं कुम्हलाते उनकी
मालाओं के फूल कभी भी
देवताओं के पग कभी भी
छूते नहीं है इस धरा को
और नहीं झपका करती हैं
पलकें देवताओं की कभी।

दम० : हाँ, अब मैं अपने नल को पहचान सकती हूँ !

[नल के कंठ में वरमाला डालती है। नल मुखौटा हटा कर आगे बढ़ कर दमयंती का हाथ अपने हाथ में लिये धीरे-धीरे उसके साथ प्रस्थान करता है। दोनों सखियाँ भी उनके पीछे प्रस्थान करती हैं। स्मृति-दृश्य समाप्त।]

[मंच पर पूरा प्रकाश फैल जाता है। देवता पहले की स्थिति में खड़े हो जाते हैं।]

इंद्र : इस तरह दमयंती ने नल को वरा।

अग्नि : उसने मनुष्य को उसकी सारी दुर्बलताओं और सीमाओं के साथ पहचाना।

वरुण : मनुष्य जो दुःख झेलता है।

यम : मनुष्य जो जीवन में जुआ खेलता है।

इंद्र : मनुष्य जो हँसता है, रोता है, गाता है।

अग्नि : मनुष्य जो अपराध करता और पछताता है।

वरुण : जो इस धरती पर पसीना बहाता है।

यम : इस माटी को छू सकते हैं जिसके पग—

इंद्र : हम भी मनुष्य होने का अर्थ जानना चाहते थे—दमयंती को अपना कर—

अग्नि : पर हमें मिला नहीं वह सौभाग्य—

वरुण : क्योंकि मनुष्य का अनन्य प्रेम हमारे पास न था—

यम : हम वंचित थे उसकी आस्था से, उसकी निष्ठा से।

कलि० : (क्रोध में)—एक मनुष्य को वर लिया उसने ! और तुम लोग देखते रहे ! कुछ करते नहीं बना तुम लोगों से ?

इंद्र : हमसे जो करते बना, किया हमने।

कलि० : जरा सुनूँ तो क्या किया तुमने !

इंद्र : हम चारों देवों ने प्रसन्न हो कर नल को वर दिये।

कलि० : (आश्चर्य और क्रोध से)—तुम चारों ने उसे वर दिये ?

अग्नि : हाँ ! हम मनुष्य के प्रेम और उसके हृदय की निश्छलता के आगे झुक गये।

कलि० : झुक गये तुम ! कायर कहीं के ! तुम्हें लज्जा नहीं आयी अपने देवता होने पर ?

वरुण : नहीं ! हमने अपने देवत्व को आज धन्य बना लिया।

कलि० : धन्यवाद आप लोगों को ! धन्य हो देवताओं तुम सब। क्या वर दे दिये तुमने उस क्षुद्र मनुष्य को ?

इंद्र : मैंने कहा—मैं इंद्र हूँ—इंद्रियों का देवता। मैं तुम्हारी हर इंद्रिय में जाग्रत रहूँगा। उसके कारण तुम्हारी गति सर्वत्र निर्बाध रहेगी।

अग्नि : मैंने कहा—मैं अग्नि हूँ—तेज का देवता। मैं तेज के रूप में तुम्हारे भीतर सदा रहूँगा। उशके कारण तुम जहाँ चाहो, मुझे पा सकोगे।

वरुण : मैंने कहा—मैं वरुण हूँ—जल का देवता। जल ही रस है। वह मेरे

प्रभाव से तुम्हारे भीतर सदा रहेगा और तुम्हें जल की कमी कभी न होगी ।

यम० : मैंने कहा मैं यम हूँ—मृत्यु का देवता । मेरे द्वारा तुम मृत्यु से उबर सकोगे । तुम बार-बार मृत्यु के द्वार पहुँच कर भी लौट आओगे ।

कलि० : बंद करो यह सब । देवता होकर मनुष्य की प्रशस्ति गाते तुम्हारी जिह्वा थकती नहीं ! ठीक है, तुम लोगों ने नल को वर दिये, मैं उसे शाप दूँगा । मैं उसे ध्वस्त कर दूँगा । (तेजी से चल देता है ।)

देवता : (एक साथ)—रुक जाओ कलियुग, रुक जाओ ।

कलि० : अब मैं नहीं रुकूँगा । तुम लोग अपना खेल दिखा चुके । अब मेरा खेल आरम्भ होगा ।

देवता : (एक साथ)—रुक जाओ कलियुग, रुक जाओ ।

जो भी नल को ध्वस्त करेगा
अपने को अभिशप्त करेगा
नल नष्ट नहीं हो पायेगा
नल ध्वस्त नहीं हो पायेगा

[कलियुग बिना सुने चला जाता है । देवताओं का धीरे-धीरे प्रस्थान जिसके साथ नैष्क्रामिकी ध्रुवा गायी जाती है ।]

सुनी न कलियुग ने देवों की
भीतर उसके आग लगी थी
रहा देखता घात लगाये
अवसर पर वह कभी न पाये ।

एक एक करके यों बीते
बारह बरस, नहीं पर रीते
नल दमयंती के सुख के पल
हर पल अविकल उनका मंगल ।

॥ पहला अंक समाप्त ॥

दूसरा अंक

[धायेत्री बृहत्सेना का प्रवेश]

बृह० : [आकाश भाषित में]—बाभ्रव्य ! ओ बाभ्रव्य, सुनते हो ? कुछ पता है भट्टिणी और महाराज कहाँ हैं ? क्या कहा ? अपराह्ण में आस्थान मंडप से उठकर महाराज देवी के साथ प्रमदवन विहार को गये थे अभी तक नहीं लौटे ? ठीक है, चलूँ·····राजकुमार इंद्रसेन और बेटी इंद्रसेना को आश्वस्त करूँ—दोनों प्रासाद में अपनी माँ को खोज रहे हैं।

(प्रस्थान)

[प्रावेशिकी ध्रुवा]

फूल रही है क्यारी-क्यारी
सुरभित है पूरी फुलवारी
है आनंद इस प्रमदवन सा
नल दमयंती के जीवन का।

[नल-दमयंती का उद्यान में टहलते हुए प्रवेश]

नल : (दमयंती का हाथ अपने हाथ में लेकर) आओ देवि ! इधर इस शिलापट्ट पर बैठेंगे···

[दमयंती के साथ शिलापट्ट पर बैठता है।]

दम० : (पार्श्व में देखकर)—अरे मेरी रोपी चंपा में फूल आ गये।

नल : इसे तुमने अपने हाथों से रोपा था ?

दम० : और नहीं तो क्या ? इसे मैंने रोपा था जब इंद्रसेना आने वाली थी—

नल : इंद्रसेना तो अब दस वर्ष की हो जायेगी—

दम० : हाँ और राजकुमार इंद्रसेन ग्यारह का—हो गया—

नल : बारह वर्ष बीत गये तुम्हारे स्वयंवर को—

दम० : हाँ पूरे बारह वर्ष। समय किस तरह पंख लगा कर उड़ता गया पता ही नहीं चला। उन सुनहरे राजहंसों की तरह, जिन्होंने हमें मिलाया था।

[एक क्षण का विराम]

दम० : सुनो, क्या वे सचमुच होते हैं ?

नल : कौन ?

दम० : सुनहरे राजहंस !

नल : अविश्वास का कोई कारण ही नहीं है देवि ! हमने उनका अनुभव किया है। वे हमारे अनुभव में हैं।

दम० : आपको कहाँ दिखा था वह राजहंस ?

नल : उधर—वापी के उस पार—

दम० : और आपने चुपके से उसे पकड़ लिया ?

नल : हाँ···

दम० : (खिलखिला कर)—मैंने भी ऐसा ही किया था—

[एक क्षण का विराम]

दम० : एक बात पूछूँ ?

नल : क्या ?

दम० : बारह वर्ष बीत चुके हमारे विवाह को—

(कहते-कहते अटक जाती है।]

नल : तो—?

दम० : आपको कभी रिक्तता का अनुभव नहीं होता ? कुछ अभाव सा—

नल : यह क्या कह रही हो दमयंती ? क्या तुम्हें ऐसा लगता है ?

दम० : नहीं। मैं स्त्री हूँ। मैंने आपको अपने सम्पूर्ण अंतःकरण से चाहा है। मेरे भीतर कोई द्वैध नहीं। पर आप तो पुरुष हैं।

नल : तो क्या हुआ ?

दम० : कहते हैं नारी वल्लरी की तरह धरती पर रहती है। वह अपनी जड़ों से अलग नहीं हो सकती। पर पुरुष तो नभ में विचरता है। वह अनुभव की विविधता चाहता है।

नल : यह किसने कह दिया ?

दम० : किसी ने नहीं···अपने अनुभव से कहती हूँ।

नल : अपने अनुभव से ?

दम० : इतने वर्षों से देखती आ रही हूँ आपको। कभी-कभी लगता है कोई छाया आ जाती है मेरे और आपके बीच—

नल : राजकार्य में मेरे व्यग्र होने से तुम्हें ऐसा लगा होगा।···नहीं तुम्हारे और मेरे बीच कोई छाया नहीं है। तुम अच्छी तरह जानती हो दमयंती कि मेरे मन में कभी कोई विकल्प नहीं आया, कोई द्वैध नहीं जन्मा तुम्हें ले कर। हाँ, पर कोई छाया है जो—

दम० : किस तरह की छाया—?

नल : कह नहीं सकता मैं। भयानक दुःस्वप्न की तरह कोई छाया मुझे दबोच लेना चाहती है। मन होता है सब कुछ छोड़ दूँ, सब तोड़ दूँ, कहीं चला जाऊँ, कहीं निकल जाऊँ। पता नहीं कौन है, जो मेरे भीतर अकुलाता है, सिर उठाता है, विरोध करता है, प्रश्नों के अम्बार लगाता है—

दम० : यह सब···इस तरह आप क्यों सोचते हैं ?

[नल का सिर अपने कंधे पर रख कर उसके बालों में उँगलियाँ फिराती है। नल आँखें बंद कर लेता है। धीरे-धीरे उसका सिर लुढ़क कर दमयंती की गोद में आ जाता है।]

दम० : यह क्या ? सो रहे हैं आप ?

नल : हाँ, नींद आ रही है।

दम० : संध्या का समय हो चला महाराज ! यह सोने का समय नहीं—

[नल को झकझोर कर उठाना चाहती है। नल को सोया देख रुक जाती है।]

[आक्षिप्तिका ध्रुवा]

कलियुग जो था घात लगाये
अवसर अब तक कभी न पाये
देखा उसने—अब है अवसर
आया कलियुग सँभल-सँभल कर।

[ध्रुवा के समाप्त होते-होते कलियुग दमयंती के पीछे आकर खड़ा हो जाता है।]

दम० : मुझे भय सा लग रहा है। यह अँधेरा सा कैसा छा गया अचानक ?

[कलियुग धीरे-धीरे दमयंती की ओर बढ़ता है। उसके साथ ही आंतरा ध्रुवा गायी जाती है।]

यह कैसा अँधियारा
मेरे मन में छाया
मुझे घेरती क्यों यह
कोई काली छाया
माया है या कोई
सपना, जिसमें खोया
मन का वह उजियाला।

दम० : (सहसा कलियुग को सामने देखकर)—क···कौन ? कौन हो तुम ?

[कलियुग उत्तर न देकर दो कदम आगे बढ़ता है]

दम० : नहीं। आगे मत बढ़ना। तुम दमयंती को नहीं छू सकते।

[कलियुग बिना उत्तर दिये फिर उसकी ओर बढ़ता है।]

दम० : महाराज देखिये तो यह कौन है ? महाराज नल, जागिये।

[नल को झकझोरती है। कलियुग नल के एकदम निकट आकर उसके ऊपर झुकता है।]

दम० : नहीं, तुम मेरे नल को नहीं छू सकते। तुम कौन हो बताओ। नहीं तो मैं तुम्हें शाप दे दूँगी—

कलि० : (डरता हुआ, पर ढीठ स्वर में)—मुझे शाप मत देना। मैं कलियुग हूँ। देखो, मैं तुम्हें तो नहीं छू रहा। मैं केवल नल को छू रहा हूँ।

दम० : पर क्यों ? तुम नहीं छू सकते इन्हें।

कलि० : न छुऊँ ? बारह वर्ष से मैं इसके मन में सेंध लगाने का अवसर खोजता आ रहा हूँ। हर बार इसके मन के द्वार थपथपा कर लौटना पड़ा। मैं बारह वर्ष से ईर्ष्या की आग में सुलग रहा हूँ। मैं इससे प्रतिशोध लेने को तड़प रहा हूँ।

दम० : पर महाराज नल से तुम्हारा क्या वैर ? वे अजातशत्रु हैं।

कलि० : यह मेरा वैरी है। इसने मेरा सब कुछ छीन लिया। मैं तुम्हें चाहता था दमयंती ! पर तुमने इसको वरा—इस क्षुद्र मनुष्य को ?

दम० : इसके लिये तुम प्रतिशोध मुझ से लो। महाराज नल का इसमें क्या दोष है ?

कलि० : मैं तुम्हें नहीं छू सकता। नल को नष्ट कर के ही मेरा प्रतिशोध पूरा होगा। मैं इसके भीतर प्रवेश करूँगा। मैं भीतर ही भीतर इसे मथूँगा—इसे ज्वालाओं में झुलसाऊँगा।

दम० : हट जाओ। तुम ऐसा नहीं कर सकते ! देखो तुम्हें प्रतिशोध मुझसे लेना था, तुम मुझे सताओ, दुःख दो, महाराज नल को नहीं।

कलि० : मैं तुम्हें अभी भी पाना चाहता हूँ दमयंती ! मैं तुम्हें भोगना चाहता हूँ और मेरे इस रूप से तुम अगम्या हो। इसलिये नल के भीतर रह कर मैं तुमको भोगूंगा—

[नल के ऊपर झुकता है।]

दम० : दूर हट जाओ। मैं तुम्हें शाप देती हूँ—तुम अपनी लगायी हुई अग्नि में स्वयं जलते और झुलसते रहोगे।

कलि० : अपना शाप लौटा लो दमयंती ! देखो, यह सब तुम्हारे लिये ही तो कर रहा हूँ मैं। और शाप दे कर भी नल के भीतर रहने से तो तुम मुझे रोक न पाओगी।

दम० : सत्ययुग रहता आया है महाराज नल के भीतर। तुम्हारे लिये वहाँ स्थान नहीं है।

कलि० : जो असमय सो जाता है, उसके भीतर मैं जा कर बसता हूँ। वह सोता है और मैं जगता हूँ। मैं भीतर ही भीतर उसको मथता हूँ।

दम० : रुक जाओ कलियुग !

[मंच पर अंधकार। नेपथ्य से आंतरा ध्रुवा गायी जाती है।]

जो सोता है
उसके भीतर
कलियुग जगता
कलियुग उसको मथे निरंतर।
जिसने जग कर
ली जमुहाई
उसके भीतर जागे द्वापर।

छोड़ नींद जब
उठे विजेता

रहना संग तब, उसके त्रेता।
उठ कर यदि जो
वह चल देता
साथ उसी के चलता सतजुग।

[ध्रुवा समाप्त होते-होते कलियुग अदृश्य हो जाता है। मंच पर हल्का प्रकाश]

दम० : (सहसा चैतन्य हो कर)—नहीं, यह सत्य नहीं हो सकता ! यह सब स्वप्न था या भ्रम ? (नल को झकझोर कर)—सुनिये महाराज ! उठिये, उठिये न !

[नल आँखें मलता हुआ उठ बैठता है।]

दम० : आप स्वस्थ तो हैं ?

नल : मैं सो गया था क्या ? इस समय नींद कैसे आ गयी ? संध्या के समय सोना निषिद्ध है। नहीं नींद नहीं आयी थी—जागा हुआ था मैं तो। पता नहीं अचानक क्या हुआ—

दम० : क्या हुआ ?

नल : लगा जैसी कोई काली छाया मेरे भीतर प्रवेश कर रही है। भीतर एकदम अँधेरा.सा छा गया।

दम० : नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। वह मेरे शाप से जल जायेगा—

कलि० : कौन ? किसको कह रही हो ?

[नेपथ्य से—राजा नल, मेरे अग्रज, मेरे भाई ! मैं तुझे द्यूत के लिये ललकारता हूँ।]

दम० : (चौंक कर)—यह कौन है ?

[नेपथ्य से फिर वही पुकार]

नल : अरे यह तो पुष्कर है ! द्यूत के लिये चुनौती दे रहा है। मूर्ख ! जैसे मुझे हरा ही देगा।

दम० : यह कोई द्यूत का समय है ? चिल्लाने दीजिये आप उसे।

नल : (आगे बढ़ता हुआ)—बस एक दाव खेल कर आता हूँ।

दम० : नहीं आप नहीं जायेंगे। मैं नहीं जाने दूँगी।

[नल को रोकती है। नल उसका हाथ झटक कर आगे बढ़ जाता है।]

दम० : रुकिये महाराज ! मेरी बात तो सुनिये।

[नल बिना सुने, बिना उसकी ओर देखे बढ़ता जाता है। दोनों का प्रस्थान।]

॥ दूसरा अंक समाप्त ॥

।। तीसरा अंक ।।

।। प्रासादिकी ध्रुवा ।।

सुनी न नल ने
बात एक भी
दमयंती की, दमयंती की ।

छाया उस पर
द्यूत खेलने का ऐसा मद ।

छायी रात घोर अँधियारी
करे प्रतीक्षा राजमहल में
बैठी दमयंती बेचारी ।

द्यूत खेलते बीती घड़ियाँ
एक एक कर घड़ियाँ बीतीं
एक एक कर बीत गये दिन
एक एक कर रातें बीतीं
इधर प्रतीक्षा दमयंती की
विकट वासना उधर जुए की
दोनों किंतु नहीं ये रीतीं ।

[धात्री बृहत्सेना और कंचुकी बाभ्रव्य का प्रवेश । बृहत्सेना के हाथ में भोजन का थाल है ।]

बृह० : फिर गये थे पता करने ?

कंचुकी : फिर गया था। अब की बार राजकुमार पुष्कर के प्रहरियों ने द्वार पर ही रोक लिया। कहा—किसी को भी भीतर जाने का आदेश नहीं है।

बृह० : राजप्रासाद के प्रधान कंचुकी का यों रोक लिया जाना ! ऐसा तो पहले कभी नहीं हुआ।

कंचुकी : जो पहले कभी नहीं हुआ, वह आज हो सकता है। जो आज नहीं हुआ—वह भविष्य में हो सकता है। पुष्कर के प्रासाद के द्वार पर रोका जाना इतना दुःखद नहीं है, जितनी उन प्रहरियों की उद्दंडता !

बृह० : क्या उद्दंडता की उन्होंने ?

कंचुकी : मैंने कहा महाराज से मिलना है, देवी दमयंती का संदेश है। तो कहने लगे—कौन से महाराज से मिलना है भूतपूर्व महाराज से या भावी महाराज से ? वर्तमान में तो कोई राजा है नहीं !

बृह० : इतनी धृष्टता ! यह दुस्साहस उन प्रहरियों का।

कंचुकी : अब इस पर क्रोध करने से क्या होगा ?

बृह० : तो फिर क्या करने से होगा ?

कंचुकी : मेरी कुछ बुद्धि काम नहीं करती। पचास वर्ष हो गये इस राजकुल की सेवा करते हुए। ऐसी अनहोनी कभी नहीं हुई—

बृह० : यह बात तुम पहले भी कुछ अवसरों पर कह चुके हो बाभ्रव्य !

कंचुकी : तब की बात और थी। अब तो सोचता हूँ सचमुच राजसेवा से विश्राम ले ही लूँ-सब प्रकार का सुख देखा यहाँ। सब प्रकार का समय देखा। और इस बुढ़ापे में बुद्धि काम करती भी नहीं है।

बृह० : बुद्धि तो किसी की भी काम नहीं करती।···चलूँ। देवी के पास ही जाती हूँ।

कंचुकी : क्या ले जा रही हो इस थाल में ?

बृह० : भोजन है · तीन दिन हो गये···कुछ भी ग्रहण नहीं किया उन्होंने !

कंचुकी : क्या ? तुम उनकी धात्री हो। तुम्हारे रहते हुए ऐसा कैसे हो सकता है ? अभी कहाँ है देवी ?

बृह० : वास भवन में ही हैं। कह-कह कर हार गयी मैं उनसे। अब फिर अनुरोध करती हूँ।

कंचुकी : मैं उधर आस्थान मंडप के द्वार पर रहूँगा। आवश्यकता पड़े तो पुकार लेना।

बृह० : हाँ।···जाती हूँ भट्टिणी के पास।

॥ विष्कंभक समाप्त ॥

[दमयंती के प्रासाद में वास भवन का दृश्य। दमयंती वातायन से बाहर झाँकने की मुद्रा में निश्छल खड़ी है। उसके पीछे की ओर से बृहत्सेना का प्रवेश।]

बृह० : भट्टिणी !

दम० : (बिना उसकी ओर मुड़े निश्चल सामने देखती हुई) क्या है ?

बृह० : कुछ भोजन लायी थी। रात्रि का दूसरा प्रहर हो चला।

दम० : मुझे क्षुधा नहीं है। रहने दो।

बृह० : तीन दिन हो गये। आपने···

दम० : (धीरे से पलट कर उसकी आँखों पर दृष्टि गड़ाती हुई)—राजकुमार और राजकुमारी ने भोजन किया ?

बृह० : हाँ, दोनों को भोजन करा कर उनके शयनकक्षों में भेज दिया है। आप···

दम० : मेरी चिंता मत करो धात्री माँ। उधर का कोई समाचार है ?

बृह० : गया तो था बाभ्रव्य फिर से। तीसरी बार हो आया है अपराह्ण से अब तक। कुछ घबरा गया है···

दम० : घबराने का इसमें क्या कारण ? द्यूत तो क्षत्रिय खेलते ही हैं।

बृह० : पर ऐसा द्यूत···तो आज तक किसी ने नहीं खेला होगा—

दम० : क्या कह रहा था बाभ्रव्य ?

बृह० : अब की बार उसे प्रहरियों ने भीतर घुसने ही नहीं दिया। कुछ अच्छे आसार नहीं लगते। अमात्य और पुरोहित भी चिंतित हैं—तीन दिन से महाराज ने किसी को दर्शन नहीं दिये। उधर सूची है कि बढ़ती ही जा रही है।

दम० : कौन सी सूची ?

बृह० : सूची उन वस्तुओं की जो महाराज दाव पर रखते हैं और हार जाते हैं। कहते हैं जीता तो उन्होंने एक भी पण नहीं अब तक। बाभ्रव्य

कह रहा था तीन-तीन लेखक बिठा रखे हैं पुष्कर ने। महाराज एक-एक वस्तु पण पर रखते हैं और हारते हैं, वह सूची में लिख ली जाती है।

दम० : अच्छा होता सब एक बार ही समाप्त हो जाता। मैं जानती थी कि यह होगा किसी दिन। इतने लम्बे समय बाद अब यह घट रहा है। पर कितना धीरे-धीरे ! अचानक क्यों नहीं समाप्त हो जाता यह !

बृह० : पता नहीं क्या कह रही हैं आप। कुछ समय में नहीं आ रहा क्या घट रहा है—?

दम० : स्वयंवर के समय से ही जानती थी मैं कि कलियुग सह नहीं पायेगा मेरी स्वाधीनता—मेरा सुख—

बृह० : कलियुग ? वह कौन है ? मैंने तो उसका नाम भी नहीं सुना।

दम० : नाम भले न सुना हो तुमने, पर वह तुम्हारे आस-पास है। वह सर्वत्र है यहाँ। (सहसा दृढ़ निश्चय के साथ)—धात्री माँ, एक काम करो।

बृह० : आज्ञा दीजिये भट्टिणी।

दम० : सारथि वार्ष्णेय को बुला लाओ। तत्काल। अभी।

बृह० : (चौंककर, आशंका से)—इस समय। रात्रि के दूसरे पहर में—?

दम० : हाँ। इसी समय। कहना—दमयंती ने बुलाया है। महान् कार्य आ पड़ा है।

बृह० : (असमंजस में)—किन्तु···

दम० : यह मेरी आज्ञा है।

[बृहत्सेना भयभीत दृष्टि से एक बार दमयंती को देखती है। फिर 'जाती हूँ'—कह कर तेजी से चली जाती है।] नेपथ्य से

॥ आंतरा ध्रुवा ॥

एक-एक कर सब हार रहा नल
फिर भी बाजी लगा रहा नल
समय उपस्थित है संकट का
ऐसा ही है खेल जुए का।

[बृहत्सेना का सारथि वार्ष्णेय के साथ प्रवेश]

वार्ष्णेय : मुझे बुलाया था बेटी ?

दम० : हाँ दादा ! संकट का समय उपस्थित है। राजा जुआ खेल रहे हैं और सब हारते जा रहे हैं।

वार्ष्णेय : मैं जाऊँ—रोकूँ राजा को ?

दम० : उससे कोई लाभ न होगा।

वार्ष्णेय : जुआ खेल रहा है वह। तुम्हारे जीवन से खेलने का कोई अधिकार नहीं है उसे।

दम० : मैंने तो अपना जीवन उसी दिन दाव पर लगा दिया जिस दिन देवताओं को छोड़ कर उन्हीं के सम्मुख महाराज नल का वरण किया···अपने लिये नहीं, बच्चों के लिये सोचती हूँ। इसीलिये बुलवाया है तुम्हें।

वार्ष्णेय : आज्ञा दो बेटी ! आज्ञा दो महारानी !

दम० : वार्ष्णेय दादा, तुम मेरे पितृगृह से मेरे साथ यहाँ तक आये, जहाँ मैं अपना सब छोड़ आयी, बस तुम्हें और धात्री माँ को नहीं छोड़ा—

वार्ष्णेय : मैं तो सेवक हूँ भट्टिणी ! यह राजकुमारी दमयंती का मुझ पर स्नेह था, और महारानी दमयंती भी मुझ पर वही स्नेह रखती हैं—उनका अधिकार है मुझ पर !

दम० : उसी स्नेह और अधिकार से मैं तुम्हें विदा देती हूँ। तुम अभी यहाँ से प्रस्थान करोगे।

वार्ष्णेय : नहीं ! यह क्या कहती हो रानी बेटी ! इस चौथेपन में मुझे यहीं पड़ा रहने दो अपने चरणों में।

दम० : मुझे तुम पर भरोसा है इसलिये मैं तुम्हें बड़ा दायित्व सौंप रही हूँ सारथि वार्ष्णेय ! तुम्हें छोड़ कर और कौन है जो मेरे बच्चों को कल दिन ढलने के पहले कुंडिनपुर पहुँचा दे, जिसके रथ की गति अबाध और अप्रतिहत हो।

वार्ष्णेय : महाराज नल के साथ रह कर सीखी है मैंने ऐसी रथचर्या।

दम० : अब उसके उपयोग का समय आ गया। तुम राजकुमार इंद्रसेन और राजकुमारी इंद्रसेना को लेकर तत्काल यहाँ से प्रस्थान करोगे।

वार्ष्णेय : कुंडिनपुर ले जाऊँ उनको ? अभी ?

दम० : हाँ अभी।

वार्ष्णेय : नहीं ऐसा मत करो भट्टिणी ! मैं महाराज भीम को क्या बताऊँगा ?

दम० : पिता से कहना—आपकी बेटी ने वही किया जो एक कुलवधू को ऐसे में करना चाहिये था। (एक क्षण सोच कर)—अथवा, कुछ मत कहना उनसे। तुम्हें मेरी शपथ है। कहना दोनों बच्चे कुछ दिन

मातामह के पास रहने आये हैं, और राजकुमार इंद्रसेन को अपने मामा दम, दांत और दमन से धनुर्विद्या भी सीखनी है। (बृह० से)— धात्री माँ, तुम भी इन लोगों के साथ जाओगी। स्मरण रखना, कुछ कहना नहीं है वहाँ। बस, तत्काल प्रस्थान करो।

बृह० : पर अभी तो सो रहे हैं वे दोनों—

दम० : सोते हुए ही रथ पर चढ़ा कर ले जाना होगा उन्हें। जिन देवताओं की साक्षी म मैंने महाराज नल को वरा, वे तुम्हारी रक्षा करेंगे—वे दोनों बच्चों की रक्षा करेंगे। अब जाओ—

[वार्ष्णेय और बृहत्सेना एक क्षण रुक कर साभिप्राय 'एक दूसरे को देखते हैं, फिर दोनों साथ-साथ चले जाते हैं। जाती हुई बृहत्सेना मुड़ कर दमयंती को देखती है। दमयंती दोनों की ओर पीठ किये स्थिर खड़ी है। नेपथ्य से सड़क पर रथ चलने की आवाज, जो क्रमशः दूर जाती हुई धीमी होती जाती है और उसके साथ आक्षिप्तिका ध्रुवा गायी जाती है।]

बीती रात, प्रभात हुआ, पूरब में छायी लाली
मिटी नहीं पर, राजमहल में, फैली छाया काली।
रही रात भर राह देखती ज्यों प्रतिमा पाषाणी
खड़ी हुई वह एक अकेली, बस दमयंती रानी॥
हुई उपस्थित प्रजा, कह रही–दर्शन दो राजा जी!
राजा फेंक रहा है पाँसे, लगा रहा है बाजी।
सूरज के उगने पर भी कैसा छाया अँधियारा
नर को रोक रही है कलि युग की काली कारा॥

[मंच पर सूर्योदय का आलोक दिखाने वाला प्रकाश। अमात्य और प्रजाजनों का प्रवेश]

अमात्य : महारानी की जय हो। प्रजाजन चिंतित हैं महारानी। एक घड़ी दिन बीता। महाराज न्याय के लिये आज भी आ कर धर्मासन पर नहीं विराजे। तीन दिन से आस्थान-मंडप सूना है।

दम० : महाराज तो पुष्कर के प्रासाद में हैं अमात्य! आप वहीं जा कर गुहार करें—

अमात्य : हम वहाँ जा चुके हैं महारानी! वहाँ किसी को प्रवेश का अधिकार नहीं। प्रजा की पुकार सुनने वाला कोई नहीं। सुना है—महाराज जुआ खेल रहे हैं और सब कुछ हारते जा रहे हैं।

दम० : जुए का तो खेल ही ऐसा है अमात्य !

अमात्य : जुए के खेल में प्रजा को तो दाव पर रखना अनर्थ है महारानी ! प्रजा राजा की संतान है। अपनी संतान को दाव पर रख कर द्यूत-क्रीड़ा करने का अधिकार राजा को नहीं है। राजपद स्वेच्छा से छोड़ने का अधिकार राजा को नहीं है असमय में। इससे मर्यादा टूटती है।

दम० : इसका न्याय कौन करेगा अमात्य ?

अमात्य : इसका न्याय आप करेगीं।

दम० : मैं ? मुझे यह अधिकार कहाँ है ?

अमात्य : आपको यह अधिकार है। आप इस राज्य की महारानी है। आप आधे सिंहासन पर विराजती हैं। जिस प्रजा ने राजा को राज्याधिकार दिया है, वही आपको न्याय का यह अधिकार भी देती है।

दम० : तब फिर आप जो कहते हैं वही हो।

अमात्य : (मार्ग दिखाते हुए)—इधर से आइये महारानी इधर से।

[दमयंती अमात्य और प्रजाजनों के साथ मंच पर परिक्रमा करती है।]

॥ आंतरा ध्रुवा ॥

राजनीति का द्यूत चला है
कोई जीता कोई हारा
इधर प्रजाजन ठगा हुआ है
ढूंढ़ रहा है एक सहारा।

[द्यूत क्रीड़ा की मुद्रा में बैठे नल और पुष्कर का प्रवेश तथा उनके सामने भाले लिये खड़े दो प्रहरियों का प्रवेश। नल के देह पर एक अधोवस्त्र को छोड़ कर कोई वस्त्र या आभूषण नहीं है।]

दमयंती, अमात्य और प्रजाजन प्रहरियों के आगे पहुँचते हैं।]

प्रहरी : रुक जाओ ! भीतर किसी को प्रवेश का आदेश नहीं है।

दम० : द्वार छोड़ दो प्रतीहार ! मैं निषध देश की महारानी तुम्हें आदेश देती हूँ।

[प्रहरी एक ओर हट जाते हैं। दमयंती नल और पुष्कर के आगे जा खड़ी होती है।]

दम० : महाराज नल !

नल : ठहरो दमयंती। मुझे यह अंतिम पण लगा लेने दो।

(पाँसे फैंकता है।)

पुष्कर : मैं जीत गया। इसके साथ ही छत्र, चँवर और सिंहासन भी मेरे हुए। मैं अब राजा हूँ।

दम० : उठिये महाराज! आपकी प्रजा आपके दर्शन के लिये द्वार पर खड़ी है।

नल : मेरी प्रजा! पर अब मैं राजा नहीं रहा।

पुष्कर : क्या? लोगों की भीड़ है बाहर?

[ताली बजाता है। उसके साथ ही दो दंडधारी सेवक प्रवेश करते हैं।]

पुष्कर : अरे इस भीड़ को हटाओ। और उन्हें बता भी देना कि नल अब राजा नहीं रहा। कोई कुछ कहे तो उसे काट कर फैंक दो।

[सेवक बाहर आ कर दंड से लोगों पर प्रहार करते हैं। लोग पीछे हटते हैं। सेवक उन्हें मारते हुए उनके साथ प्रस्थान करते हैं।]

नल : यह क्या करते हो पुष्कर! प्रजाजनों को मैंने सदैव अपनी संतान माना है।

पुष्कर : मेरे अधिकार-क्षेत्र में हस्तक्षेप मत करो। यह मत भूलो कि तुम एक भिखारी हो अब। भिखारी नल! क्या राजपाट की वासना अभी भी शेष है? हो, तो अंतिम दाव भी अभी शेष है।

नल : अब कुछ भी शेष नहीं रहा।

पुष्कर : अभी तो तुम्हारे पास सबसे बड़ी संपत्ति बची हुई है।

नल : कहाँ?

पुष्कर : (दमयंती को लालसा से देखते हुए)—यह—तुम्हारी पत्नी दमयंती। यह स्वयं यहाँ इसीलिये आ कर उपस्थित हुई है। इसे पण पर रख दे। बड़ा भाग्य है इसका। अब की तू जीत जायेगा। देख, अभी तक जो कुछ मैंने जीता, मैं वह सब दाँव पर रखता हूँ। तेरी ओर से केवल दमयंती।

दम० : आर्यपुत्र! उठिये।

नल : (अचानक उठ कर)—नहीं! (दमयंती की ओर बढ़ कर)—यह मैंने क्या किया दमयंती। मैं सब कुछ हार गया। सब चला गया।

दम० : नहीं महाराज ! अभी भी कुछ नहीं गया । आइये चलें ।

नल : कहाँ ?

दम० : अपने प्रासाद में और कहाँ ?

दम : वह प्रासाद मैं हार चुका देवी ! मैंने उसे पण पर रखा और हार गया । उसके भीतर की सारी संपत्ति को पण पर रखा और हार गया । फिर फिर उसके दास-दासियों को—

दम० : तो क्या हुआ ? हम कहीं भी रह लेंगे । अमात्य या नगर श्रेष्ठी के यहाँ । यहाँ से तो चलें ।

(नल दमयंती के साथ चलता है ।)

पुष्कर : (सहसा उठ कर)—ठहरो भिक्षुक नल ! तुम द्यूत में हारी वस्तुएँ अपने साथ चुरा कर ले जा रहे हो ।

नल : कहाँ ? मेरे पास कुछ नहीं है ।

पुष्कर : तुम अपनी पत्नी के तन के सारे आभूषण द्यूत में हार चुके हो ।

(दमयंती एक-एक कर आभूषण उतार बिना मुड़े, बिना पीछे देखे उन्हें पुष्कर की ओर फैंकती है । पुष्कर एक-एक कर उन्हें उठाता है, देखता है और हँसता है ।

नल–दमयंती पुष्कर के प्रासाद से बाहर आते हैं । दोनों प्रहरी घोषणा करते हैं ।

प्रहरी : सावधान ! नगर के सारे प्रजाजन सुनें । जो कोई भूतपूर्व महाराज और महारानी को आश्रय देगा उसे प्राणदंड दिया जायेगा । जो कोई उनको भिक्षा, भोजन और वस्त्र आदि देगा उसके हाथ काट लिये जायेंगे । जो उनसे बात करेगा उसकी जिह्वा खींच ली जायेगी । जो उसकी ओर ताकेगा, उसकी आँखें निकाल ली जायेगीं ।

[नल–दमयंती एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए आगे बढ़ते हैं ।]

।। आंतरा ध्रुवा ।।

तीन दिवस वे
राजमार्ग पर
चले नगर में
डगर डगर में
गली गली में
रहे भटकते
नल-दमयंती
नल-दमयंती

कोई उनसे नहीं बोलता
कोई उनको नहीं देखता
प्रजा काँपती है राजा से
ठौर नहीं है इन दोनों को
आज नगर में, अपने घर में ।

[नल-दमयंती का प्रस्थान]

।। तीसरा अंक समाप्त ।।

।। चौथा अंक ।।

चांडालों की बस्ती का दृश्य । नेपथ्य से कुत्तों के भौंकने और सूअरों के चीखने की आवाजें । तीन पुरुष और तीन स्त्रियों का प्रवेश । कुछ के हाथ में मदिरा पात्र हैं कुछ के हाथ में ढपलियाँ । वे एक दूसरे के हाथ से मदिरा पात्र ले कर मदिरा पीते हैं, गाते और नृत्य करते हैं ।

।। चर्चरी ।।

मदिरा पी ले और नाच ले
जी ले जी ले जी ले जी ले
दिग्ले दिग्ले दिग्ले दिग्ले
यह प्रसाद है देवी का-ले !

स्त्री 1 : ए डाकिनी ! ले और मदिरा पी ले । (मदिरा पात्र देती है ।)

डाकिनी : (मदिरा पात्र ले कर पीने का अभिनय कर)—बड़ा आनंद आया । (स्त्री-3 को पात्र देती हुई)-- ए शंखिनी, तू भी ले !

शंखिनी : बड़ी पुरानी मदिरा है । बड़ी स्वादिष्ट । (पुरुष-1 से)—क्या मालूर के कोश में रखी थी, क्यों वीरभद्र !

वीरभद्र : मदिरा नहीं शीधु है यह !

पुरुष 2 : शीधु—हा-हा ! ला मुझे भी तो चखा । (स्त्री-3 से मदिरा पात्र ले कर पीने का अभिनय कर)—आह ! आनंद आ गया ।

(स्त्री-1 को छोड़ कर सब हँसने लगते हैं ।)

स्त्री 1 : चुप रहो। (सब चुप हो जाते हैं।)

स्त्री 1 : (पुरुष-२ से)—विरूपाक्ष ! क्या हुआ उन दोनों का ?

विरूपाक्ष : किन दोनों का देवी माँ ?

स्त्री 1 : दोपहर में जो स्त्री-पुरुष बस्ती में आये थे। उनको भोजन दिया ?

विरू० : अरे वे दोनों ! जो नगर से आये हैं। कुछ खाते ही नहीं थे और भूखे भी बहुत थे कभी नहीं देखे ऐसे विचित्र मनुष्य। शूकर-मांस दिया, तो नहीं खाया। कहने लगे—यह तो वहै है···(वीरभद्र से)—क्या कह रहे थे—क्या है ?

वीर० : अभक्ष्य।

विरू० : हाँ अभक्ष्य !—हा-हा ! विचित्र पुरुष, विचित्र स्त्री !

(स्त्री-1 को छोड़ कर सब उठा कर हँसते हैं।)

शंखिनी : अरे उनको मदिरा दे देना था कुछ-स्वस्थ हो जाते दोनों।

डाकिनी : मदिरा नहीं शीधु !

वीर०, वीरू शंखिनी : हाँ, शीधु !

(सब फिर खिलखिला कर हँसते हैं।)

स्त्री 1 : चुप ! (सब चुप हो जाते हैं।)—वह पुरुष राजा नल है।

सब : (साश्चर्य)—राजा नल ?

स्त्री 1 : हाँ हमारे देश का राजा नल।

वीर० : चांडालों की बस्ती में वह भिखारी···राजा नल है ? क्या कहती हो देवी माँ !

स्त्री 1 : हाँ वह राजा नल ही है। वह जुए में सब हार चुका है—सारा राजपाट। वह स्त्री उसकी रानी है। पहले तो नहीं बता रहे थे दोनों। मैंने डपट कर पूछा स्त्री से, तब रोते-रोते बताया उसने। सुनो, इस राजा ने हमारी सहायता की थी अकाल के समय। उसने अन्न, वस्त्र भिजवाये थे हमारे लिये। हम उसकी सहायता करेंगे।

पुरुष 3 : सहायता तो हमने उसकी की देवी माँ। जब वीरभद्र ने बताया कि वे शूकर-मांस नहीं खा रहे हैं, तो मैंने अपूप लाकर दिये।

शंखिनी : हाँ मैंने बनाये थे अपूप। मैंने इससे ले जा दे दे उन्हें।

पुरुष 3 : पहले तो अपूप भी नहीं खा रहे थे दोनों। पुरुष ने कहा कि वह पहले असनान करेगा—फिर करेगा—क्या कह रहा था ?

शंखिनी : संध्या !

पुरुष 3 : हाँ संध्या ! फिर वह सरोवर गया । असनान किया उसने, फिर पूजा की । और वह स्त्री ! स्वयं भूखी बैठी रही, पूजा करके वह आया तो अपने हाथ से उसे खिलाने लगी । मैंने देखा—अपनी आँखों से ।

शंखिनी, डाकिनी : सचमुच ? कैसी विचित्र स्त्री है । उसके साथ नहीं खा सकती थी ?

पुरुष 3 : जब वह पुरुष खा चुका, तब खाया उसने ।

विरू, बीर० : बड़ी विचित्र स्त्री है !

(स्त्री 1 को छोड़ कर सब ठठा कर हँसते हैं ।)

(दो दंडधारी सैनिकों का प्रवेश)

सैनिक 1 : (कड़कते स्वर में)—क्या हो रहा है यहाँ ?

(सब लोग सहसा चुप हो जाते हैं ।)

स्त्री 1 : यह पक्कण है—हम चांडालों की बस्ती । तुम लोग कैसे घुस आये यहाँ !

सैनिक 2 : कैसे घुस आये ? अरे देखती नहीं, हम राजपुरुष हैं । एक पुरुष और एक स्त्री को खोज रहे हैं हम । हम यहाँ राजकार्य से आये हैं । अभी बाँध कर ले जायेंगे राजा के सामने और पड़ेंगे पीठ पर कोड़े तो पता चलेगा ।

तीनों पुरुष : देवी माँ से इस तरह बोलते हो । तुम्हारा यह साहस ।

[सैनिकों पर झपट पड़ते हैं और फुर्ती से उनके हाथ से भाले छीन लेते हैं ।]

दोनों सैनिक : अरे-अरे यह क्या करते हो भाई ! हम राजपुरुष हैं ।

शंखिनी : राजपुरुष हो तो अपनी मर्यादा में रहो । देवी माँ के आगे तुमने यह धृष्टता क्यों की ? क्षमा माँगो इनसे ।

दोनों सैनिक : हमें छिमा करो देवी माँ । हमें पता नहीं था कि तुम इन चांडालों की देवी माँ हो ।

स्त्री 1 : जाओ, क्षमा किया । तुम लोग हमारे अतिथि हो । लो मद्य पियो ।

(शंखिनी को संकेत करती है । शंखिनी मदिरा पात्र उनके सामने लाती है ।)

सैनिक 1 : यह क्या है ? मद्य ? अरे हम सूर्यवंशीय क्षत्रिय हैं हम चांडालों का छुआ मद्य कैसे पी लें ।

सैनिक 2 : भैया ताम्रचूड !

सैनिक 1 : क्या है भैया शंखचूड !

सैनिक 2 : सुगंध बड़ी अच्छी आ रही है मद्य के पात्र से । अच्छी वस्तु लगती है ।

सैनिक 1 : पर हम तो भैया सूर्यवंशी ठहरे ।

सैनिक 2 : अरे मदिरा सदा पवित्र होती है सूर्यवंश की संतान ! इसमें कोई दोष नहीं होता । (मदिरा पात्र उठाकर पीने का अभिनय कर)—आनंद आ गया ! बड़ी उत्तम मदिरा है ।

डाकिनी : यह शीधु है ।

सैनिक 1 : शीधु है ? अरे वही तो मुझे लग रहा था । बड़ा उत्कृष्ट शीधु बनाते हैं ये लोग । ला भाई, चख ही लें । (सैनिक-2 के हाथ से पात्र लेकर पीने का अभिनय करता है ।)

विरूपाक्ष : बैठिये महाराज ! तनिक विश्राम कर लीजिये । बड़े थके लग रहे हैं ।

सैनिक 1 : (बैठता हुआ)—ना भैया ना ! बैठेंगे नहीं । राजकार्य से निकले हैं न । बस थोड़ी सी मदिरा और दो ! (शंखिनी उसके पात्र में मदिरा ढालती है ।)

सैनिक 2 : (बैठता हुआ)—हाँ, बैठना बिल्कुल भी नहीं है । सुनो अब काम की बात सुनो तुम लोग । एक पुरुष और एक स्त्री । पुरुष अधनंगा—स्त्री के तन पर कोई आभूषण नहीं । उन दोनों पर राजद्रोह का आरोप है, राजा उन दोनों से आशंकित हैं । इधर ही बचते हुए निकले हैं वे दोनों, हम उन्हीं का पीछा कर रहे हैं । नाम है उनके नल और दमयंती । जो कोई उनको आश्रय देगा, अन्न जल देगा, उसे सूली पर चढ़ा दिया जायेगा ।

[स्त्री-1 पुरुष-3 को इशारा करती है । वह स्त्री-1 के पास आकर बैठ जाता है ।]

विरू० : (सैनिक-1 से)—नल दमयंती नाम है उनका ? इन दोनों पुरुषों का नाम ही हमने नहीं सुना कभी ।

सैनिक 1 : मूर्ख ! दोनों पुरुष नहीं एक पुरुष है एक स्त्री ।

विरूपाक्ष : एक पुरुष है एक स्त्री ! अर्थात् नल है स्त्री और दमयंती पुरुष हुआ—यही न !

सैनिक 1 : मूर्ख ! कैसे लोगों से पाला पड़ा है। ला मदिरा और दे।

डाकिनी : मदिरा नहीं शीधु है यह !

सैनिक 1 : हाँ जो कुछ है, दे। तुम चांडालों के बीच कहाँ फँस गये हम सूर्यवंशी क्षत्रिय। तुम लोग तो एकदम मतिहीन निकले। क्या है पुरुष है क्या स्त्री यह भी नहीं समझते।

विरू० : क्या बताया था आपने ? पुरुष का नाम दमयंती और स्त्री का नाम नली—यही न ?

सैनिक 2 : अरे कैसे जड़ बुद्धि मूर्खों के बीच आ गये। ला भइ, मदिरा दे। (सैनिक 1 के हाथ से मदिरा पात्र लेकर पीता है। स्त्री 1 पुरुष 3 को जाने का इशारा करती है। पुरुष 3 का प्रस्थान।)

विरू० : तो नलयंती तो पुरुष है और दम है स्त्री—अब क्या हुआ इन दोनों का सो बताइये।

सैनिक 1 : देख भइ, हमें काम बहुत है। यह तो तुम लोगों को ज्ञात है कि पहले हमारे राजा थे नल और रानी थी दमयंती।

वीर० : हमें ज्ञात कहाँ से होगा महाराज ! राजा के तो आज तक कभी हम चांडालों की बस्ती में चरण पड़े नहीं।

सैनिक 2 : चरण नहीं पड़े तो अब पड़ सकते हैं। कान खोल कर सुन लो···

विरू० : हमारे तो कान सदा खुले ही रहते हैं। कान बंद कैसे होते हैं महाराज ?

शंखिनी : नगर के लोगों के बंद हो जाते होंगे।

(सैनिकों और स्त्री 1 को छोड़कर सब हँसते हैं।)

सैनिक 1 : चुप ! देखो तुम लोग मसखरी मत करो। नल और दमयंती को किसी ने शरण दी तो सूली पर चढ़ा दिया जायेगा।

(पुरुष-3 पुनः प्रवेश स्त्री 1 के पास खड़ा हो जाता है।)

स्त्री-1 : (जनांतिक में पु०-3 से)—उन लोगों की कुछ व्यवस्था कर दी।

पु० 3 : (जनांतिक में)—हाँ, पीछे के जंगल में भेज दिया।

सै० 1 : यह क्या खुसुर-फुसर हो रही है ? किसको जंगल में भेज दिया, बताओ !

पु० 3 : कुछ नहीं महाराज ! शूकरों का बता रहे थे। संध्या के समय उनको स्नान कराने सरोवर की ओर ले जाते हैं न पीछे जंगल में—

सै० 2 : (हँस कर) लो सुनो ! शूकर भी स्नान करते हैं कहीं !

शंखिनी : हमारे शूकर तो दिन में दो बार स्नान करते हैं ब्राह्मणों की तरह !

बिरू० : तो इस समय हमारे राजा कौन हैं यह तो आपने बताया ही नहीं महाराज ।

सै० 1 : अब राजा हुए हैं महाराज पुष्कर ।

बिरू०, बीर० : पुष्कर । हा-हा—। (हँसते हैं ।)

सै० 1 : क्यों हँसते हो ? जिह्वा खींच ली जायेगी ।

बीर० : क्षमा करें महाराज, हँसी आ गयी । हमने अपने एक शूकर का भी नाम पुष्कर रखा है न इसलिये । (फिर हँसते हैं ।)

सै० 1 : चुप । (सै०-2 से) भैया शंखचूड । अब चांडालों की बस्ती में कौन जाय ? यहाँ तो आये न होंगे वे ।

सै० 2 : फिर भी राजश्याल का आदेश है । खोजना तो पड़ेगा ही । चलो उठो अब । (उठता है ।)

सै० 1 : (उठता हुआ)—चलो ।

(दोनों लड़खड़ाते हुए जाते हैं ।)

पु० 3 : उन दोनों को काली की गुफा के पास वाली गुफा में पहुँचा दिया देवी माँ । वहाँ उन्हें खोजने कोई नहीं पहुँचेगा ।

स्त्री-1 : अच्छा किया । चलो बलि का समय हुआ । शेष सब—हाँ चलो ।

(सबका प्रस्थान । प्रवेशक समाप्त हुआ ।)

(जंगल में वृक्ष की छाया में बैठे नल-दमयंती का प्रवेश)

दम० : (उद्विग्न होकर आहट लेती हुई)—पदचाप का स्वर लग रहा है । कहीं हमें खोजते हुए वे यहाँ तक तो नहीं आ गए ।

नल : कौन ?

दम० : पुष्कर के सैनिक ।

नल : नहीं, वे यहाँ तक नहीं आ सकते । हम तो उस गुफा से भी बहुत दूर निकल आये जहाँ उसे चांडाल ने हमें छिपाया था·····

दम० : अब रात्रि में कहाँ जायेंगे ? वापस पक्कण चलें ?

नल० : वहाँ ? चांडालों की बस्ती में ? नहीं—वहाँ अब नहीं जायेंगे ।

दम० : वे कितने भले लोग हैं । नगर में कोई हमें शरण देने को तैयार न

था उन्होंने हमें शरण दी। वह स्त्री देवी माँ···कह रही थी—बेटी तू यहीं रह जा—यहाँ किसी राजा का कोई भय नहीं—

नल : फिर भी वहाँ निवास कैसे कर सकते थे हम ?

दम० : तब फिर कहाँ निवास करेंगे हम ?

नल : पता नहीं। दसों दिशाएँ खुली हुई हैं। कहीं कोई आश्रय मिल ही जायेगा।

दम० : जैसे उस पक्कण में मिला।

नल : हाँ पहली बार देखा पक्कण। इतने निकट से। चांडाल वैसे नहीं हैं जैसा उन्हें बताया जाता है।

दम० : वे बहुत भले लोग हैं। (थकान के कारण नल के कंधे पर सिर रख देती है।)

नल : (स्नेह से उसका सिर और पीठ थपथपाता हुआ)—थोड़ा विश्राम कर लो। बहुत थक गयी हो। (दमयंती का सिर अपनी गोद में रख लेता है।) मेरे कारण तुम्हें कितना दुःख झेलना पड़ रहा है।

दम० : मेरे लिये तो यह सुख की घड़ी है। मेरा सब कुछ मेरे पास है।

नल : मैं अभी भी कहता हूँ—तुम कुंडिनपुर चली जाओ—पिता के पास।

दम० : फिर वही बात। कह तो दिया आप चलिये साथ। हम दोनों कुछ दिन वहीं रह लेंगे। इंद्रसेन और इंद्रसेना तो वहाँ हैं ही।

नल : नहीं। यह नहीं हो सकता। इस वेश में मैं कैसे वहाँ जाऊँगा ? और अपना यह कलंकित मुख कैसे दिखा पाऊँगा तुम्हारे पिता और भाइयों को।

दम० : ऐसा क्यों सोचते हैं आप ? द्यूत तो सभी क्षत्रिय खेलते हैं। द्यूत में या तो पराजय होती है या विजय। यह संयोग ही था कि आप हारते गये।

नल : तो तुम रुष्ट नहीं हो मुझसे ?

दम० : (हँसती हुई)—सच कहूँ ?

नल : हाँ, कहो।

दम० : मैं आप पर पहले से भी अधिक मुग्ध हूँ।

नल : नहीं।

दम० : हाँ।

नल : पर किसलिये ? इतना सब हो चुकने पर—

दम० : इतना सब हो चुकने पर भी प्रसन्न हूँ मैं। क्योंकि आपने द्यूत खेला···

नल : उपहास कर रही हो ?

दम० : उपहास नहीं है यह। मैंने आपका वरण किया···किसलिये ? इसीलिये कि आप संकट में कूद सकते हैं—

नल : मैंने इस संकट का वरण क्यों किया ? क्यों ? मेरे भीतर कोई था जो कहता था सब डूब जाने दे, मिट जाने दे। फिर देख सब निःशेष हो चुकने पर तेरे पास क्या बचता है। जो शेष रहा इन तीन दिनों में उसे मैंने जाना—और सत्य वही था। तुम्हारा यह रूप—इस संकट में यह धैर्य—पुरवासियों का हमें छिपाना—चुपचाप हमें बाहर निकालना—राजकुमार इंद्रसेन और बेटी इंद्रसेना को प्रासाद में न पा कर पुष्कर का क्षोभ···फिर वह पक्कण—अब तक कहाँ जानते थे हम कि नगर के बाहर ये लोग इस तरह रहते हैं···

दम० : (जमुहाई लेकर)—नींद आ रही है···

नल : कुछ खाया भी तो नहीं है···

दम० : अब भोजन की इच्छा नहीं रही। वहाँ पक्कण में वह अपूप खा लिया था—

नल : धनुष-बाण होता साथ तो मृगया कर के उत्तम मांस खिलाता तुम्हें। अब तो···कोई पक्षी हाथ लग जाये—

दम० : कैसे हाथ लगेगा ?

नल : प्रयास करता हूँ किसी तरह कोई मृग या पक्षी हाथ लगे, तो···

दम० : मैं आग जलाने का जतन करती हूँ···अँधेरा हो चला—दूर मत जाइयेगा आप···

[नल का प्रस्थान। दमयंती वृक्ष से टिक कर बैठी जिस ओर नल गया है, उस ओर देखती रहती है।]

॥ आंतरा ध्रुवा ॥

चला दूर नल
आस लगाये
दाना चुगने
पछी आये।

फैंका उन पर
कपड़ा अपना
उड़े तुरत वे
पंछी नभ में
कपड़ा ले कर
हुआ निर्वसन
अब राजा नल ॥

[नल विक्षिप्त की भाँति केवल एक कौपीन पहने आता है ।]

दम० : (उसका मुख देख कर, आशंकित)—क्या हुआ महाराज ?

नल : वे मेरा अधोवस्त्र भी ले गये···

दम० : कौन ?

नल : वे स्वर्ण के पंछी ! वे भूमि पर दाना चुग रहे थे । मैंने उन्हें पकड़ना चाहा । सोचा उनके मांस को पका कर भोजन भी मिलेगा और उनके पंख बेंच कर धन भी । मैंने अपना अधोवस्त्र उतार कर उन पर डाल दिया । वे वस्त्र उठा कर ही उड़ गये··· मैं दौड़ा उनके पीछे पर पकड़ नहीं पाया उनको··· उड़ते हुए वे मुझ पर हँस रहे थे । उन्होंने कहा—हम पंछी नहीं, वे पासे हैं, जिनसे खेल कर तूने अपने भाग्य का उलटफेर किया । हम तुझे ऐसा ही देखना चाहते थे— ऐसा ही भूखा-नंगा ।

दम० : आपने कोई दुःस्वप्न देखा है महाराज ! आप बहुत थक भी तो गये हैं । थोड़ा विश्राम कर लीजिये—सब ठीक हो जायेगा···हम किसी गुफा में डेरा डाल लेंगे···आप अपना धनुष-बाण बना लीजिये, मैं वृक्षों की छाल से बल्कल वस्त्र बनाऊँगी···

नल : नहीं, अब कुछ नहीं हो सकता । मैं बहुत थक गया हूँ दमयंती ! मैं समय के आगे हार गया···मेरे पास कुछ शेष नहीं रहा । एक अधोवस्त्र तक नहीं···

दम० : एक अधोवस्त्र चले जाने से आप ऐसे खिन्न हैं ! यहाँ मेरे अतिरिक्त आपको देखने वाला है ही कौन ? आपको आस्थान मंडप में अमात्य और प्रजा को दर्शन देने थोड़े ही जाना है !

नल : वह मुझे देख रहा है । वह मुझ पर हँस रहा है ।

दम० : कौन ?

नल : काल—मेरा समय···

दम० : नहीं···यह सब मत कहिये आप···मुझे भय लगता है···देवता इस संकट में हमारी सहायता करेंगे।

नल : देवता अब कहाँ हैं यहाँ ? और वे क्यों सहायता करने आयेंगे हमारी। वे तो स्वयं तुम्हें पाना चाहते थे।

दम० : फिर भी मैं समझती हूँ वे हमारी सहायता करने आयेंगे—वे हमें इस तरह नहीं छोड़ सकते हिंस्र पशु के जैसे उस कलियुग के आगे निःशस्त्र···

नल : किसका कह रही हो ? कलियुग कौन ?

दम० : कुछ नहीं···

नल : (पार्श्व में दूर देखता हुआ)—अरे वही तो है ! वह रहा···

दम० : कौन ? किसका कह रहे हैं ?

नल : वह चतुष्पथ···मैं पहचानता हूँ उसे। मृगया के लिये मैं यहाँ आता रहा हूँ न। यह इधर का मार्ग तो निषध से आता है, जिससे चल कर हम आये। फिर यह पूर्व का मार्ग है जो कोसल जाता है और वह उधर दक्षिण का मार्ग दक्षिणापथ जाता है। इनके बीच एक मार्ग और फूटा है - वह जाता है विदर्भ। मैं उधर गया था अभी। वहाँ वटवृक्ष के नीचे एक सार्थ टिका हुआ है, वे लोग विदर्भ जायेंगे ऐसा उनकी बातचीत से ज्ञात हुआ। ऐसा करते हैं—मैं तुम्हारे साथ चतुष्पथ तक चल कर उस सार्थ के पास छोड़ आता हूँ तुम्हें···

दम० : (आशंका से नल को देखती हुई)—उससे क्या होगा ?

नल : विदर्भ जायेगा न वह सार्थ···तुम उसके साथ विदर्भ चली जाना··· कुंडिनपुर···

दम० : मैं ? अकेली ?

नल : अकेली क्यों ? वे सब लोग साथ रहेंगे न ! बड़ा सार्थ है। स्त्रियाँ और बच्चे भी साथ हैं। एक पुरोहित भी दिखे थे।

दम० : (आहत भाव से)—कह क्या रहे हैं आप ? और आप कहाँ जायेंगे ?

नल : मेरा क्या है ? मैं पुरुष हूँ। कहीं भी रह लूँगा। पर तुम्हें ऐसी स्थिति में कैसे देख सकता हूँ मैं ? तुम कुंडिनपुर की राजकुमारी··· निषध की महारानी··· जिसे देवताओं ने चाहा—

दम० : और मैं आपको ऐसी स्थिति में छोड़ जाऊँगी। ऐसी [illegible]ने

सोची कैसे ? फिर नहीं कहेंगे आप ऐसी बात···क्या मैं आपको भार लगने लगी हूँ ? (रोने लगती है।)

नल : इतना सब दुःख···तुम्हारे लिये नहीं है दमयंती···तुम नहीं झेल सकोगी यह सब।

दम० : आपको क्या पता मैं कितना कुछ झेल सकती हूँ। (आँसू पोंछ कर) —इसमे आप उस सार्थ में जा कर कुछ भोजन माँगते तो···

नल : मैं वहाँ माँगने जाऊँगा। ऐसा तो तुम्हें सोचना भी नहीं चाहिये था। मैं क्षत्रिय पुरुष हूँ।

दम० : क्षत्रिय पुरुष ! वह तो आप हैं ! पर वह पक्षियों के पंख बेंचने की बात आपके मन में कैसे आयी ? यह तो वणिक् का कर्म है।

नल : ठीक कहती हो। मुझे पता नहीं क्या होता जा रहा है।

दम० : सब ठीक हो जायेगा। हो जायेगा न ?

[नल के कंधे पर सिर रख देती है। नल स्नेह से उसका सिर थपथपाता है। दमयंती सो जाती है। नल उसका सिर पेड़ के तने से टिका कर उसे सुला देता है। चौकन्ना होकर आस पास देखता है। दमयंती स्वप्न में कुछ बड़बड़ाती है। नल एक क्षण विषाद भरी दृष्टि से उसे देखता है। फिर उठकर धीरे-धीरे इधर से उधर टहलता है। सहसा दूर किसी वस्तु को देख कर तेजी से एक ओर लपकता चला जाता है।

हाथ में एक नंगी तलवार लिए वह पुनः आता है। मुख पर अब विषाद के स्थान पर आशान्वित होने का भाव आता है।

दमयंती के पास आकर उस पर झुकता है। मुख पर विषाद का भाव आता है। कभी तलवार को, कभी दमयंती को देखता है। धीरे-धीरे उसके मुख पर एक क्रूर निश्चय का भाव आता है। दूसरे हाथ से दमयंती की साड़ी का आँचल उठाता है। एक क्षण अनिश्चय, करुणा और विषाद में दमयंती को देखता रह जाता है। सहसा निश्चय में भरकर तलवार से आँचल का टुकड़ा चीर कर उसे अपनी कमर में लपेटता हुआ बिक्षिप्त की भाँति एक ओर दौड़ पड़ता है।

दौड़ते हुए सहसा ठहर कर पीछे मुड़कर दमयंती को देखता है। सिर पर हाथ मार कर रो पड़ता है। फिर धीरे-धीरे चला जाता है।

एक क्षण का अंतराल । दमयंती जागती है ।

दम० : (जमुहाई लेती हुई)—कितना समय हो गया ? क्या कर रहे हैं आप···सोये नहीं क्या ?

(सहसा चैतन्य होकर चारों ओर देखती है ।) अभी तो यहीं थे । मेरा सिर वृक्ष से टिकाकर उस ओर दौड़ कर गये थे । फिर लौट भी तो आये थे । फिर···?

(एक झटके से उठ खड़ी होती है । आँचल सँभालने पर ध्यान जाता है कि साड़ी का एक टुकड़ा काट लिया गया है ।)

अरे, यह क्या ? संध्या के स्नान के पश्चात् बदलने को वस्त्र नहीं था, तो इसमें से फाड़ लिया । सचमुच अर्धांगिनी बना लिया मुझे ।

(नल जिधर से तलवार उठाकर लाया था, उधर कुछ कदम चलकर आस-पास देखती है ।)

नहीं, इस दिशा से तो वे वापस लौट आये थे मेरे पास ! फिर वे पास आकर बैठ गये हैं यह समझ कर निद्रा में मैं ऐसी डूबी कि कुछ भान ही नहीं रहा । (दूसरी दिशा में चल कर)—कहाँ हैं आप ? हँसी में कहीं छिप गये क्या ? (भय की छाया उसके मुख पर आती है ।) नहीं···ऐसा नहीं हो सकता ! वे इस तरह मुझे छोड़कर नहीं जा सकते ! नहीं, नहीं !

(दो-तीन बार मंच पर इधर से उधर चक्कर लगाती है । मुख पर व्यथा और यंत्रणा का भाव, जो विक्षिप्ति में बदलने लगता है । आँसू पोंछ कर पागल की तरह हँसती है और हँसती हुई चली जाती है ।)

॥ प्रासादिकी ध्रुवा ॥

दिन फिर बीता, फिर साँझ ढली
एकाकिनी वह, फिरती रही
यहाँ-वहाँ वन में दमयंती
हँसती रोती बनी बावली ॥

(पूर्ववत् अर्धविक्षिप्त स्थिति में नल वापस आता है । हाथ में फाड़ा गया साड़ी का आँचल ।)

नल : दयंती ! तुम कहाँ हो दमयंती ! यह तुम्हारा आँचल मैं तुम्हें लौटाने आया हूँ ! (आस-पास देखता है) नहीं मैं तुम्हें खोना नहीं चाहता था दमयंती ! मैं वापस लौट आया हूँ तुम्हारे पास ! कहाँ हो तुम ? (पहले के स्थान पर देखकर)—यहाँ नहीं है। दमयंती ! दमयंती !! चली गयी वह ! अब नहीं मिलेगी कभी। यह मैंने क्या किया ? मैंने फिर द्यूत खेला, अब की बार दमयंती को ही पण पर रखकर उसे भी हार बैठा। यह कौन सी काली छाया थी मेरे भीतर, जो मुझे उससे दूर ले गयी ?

।। आक्षिप्तिका ध्रुवा ।।

मेरे भीतर
कैसी यह थी
काली छाया
दूर ले गयी
सहसा जो यों
मुझको उससे।
दमयंती से,
दमयंती से।

रोता मेरा
सूना अंतर
कलियुग हँसता
मेरे भीतर।

[बाहुक का प्रवेश। काला रंग, नाटा कद, छोटे और कुछ मुड़ी कलाई वाले हाथ। हँसता हुआ आता है और नल से सट कर खड़ा हो जाता है।]

नल : दूर हटो ! दूर हटो। कौन हो तुम ?

बाहुक : (हँसता हुआ) — बड़ी घिन लग रही है ? अरे राजन्, मैं तू हूँ और तू मैं है।

नल : बंद करो अपनी तू-तू मैं-मैं।

बाहुक : बुरा लगा देख कर और सुन कर ? मैं क्या तेरा रूप नहीं हूँ ?

नल : मैं क्या इतना बौना और कुरूप हूँ ?

बाहुक : हाँ ! इतना बौना और इतना ही कुरूप !

नल : नहीं !

(बाहुक हँसता हुआ नल की ओर बढ़ता है। नल आतंकित होकर पीछे हटता है और मंच के पीछे अंतर्धान हो जाता है। बाहुक का अट्टहास। सहसा हँसते-हँसते यंत्रणा का भाव उसके चेहरे पर आता है, जो गहरा होता जाता है। पीड़ा से विकृत चेहरे वाला बाहुक थक कर गिर पड़ता है।

(अंधकार)

॥ चौथा अंक समाप्त ॥

।। पाँचवाँ अंक ।।

संध्या का समय । हल्का अंधकार ।
जंगल का दृश्य । व्याध का प्रवेश ।

व्याध : साँझ हो गयी । झोंपड़ी के द्वार पर आग जला लूँ । आग नहीं जलाऊँगा, तो अँधेरे में कोई भी हिंसक जन्तु आकर धावा बोल देगा ।

(गाते हुए लकड़ियाँ बटोरता है ।)

आग देवता, आग देवता
आग ही माता
आग पिता है
आग जलाओ
अँधियारे में
इस जंगल में
आग जलाओ ।
आग देवता, आग देवता···

[चकमक पत्थर रगड़ कर आग जलाने लगता है । मंच पर आग जलने का प्रकाश । नेपथ्य से दमयंती का चीत्कार सुनाई देता है ।]

व्याध : यह कौन चिल्लाया ? कोई स्त्री ?

(झपट कर जाता है और झोंपड़ी से खड्ग उठाकर लाता है। फिर वही चीत्कार।)

इतने वर्ष हो गये इस वन में। कभी ऐसी चीख नहीं सुनी। कोई माया है, इंदरजाल है या मेरा भरम है। (परिक्रमा कर) कौन है ? कौन है उधर ?

[अजगर की लपेट मे दमयंती का प्रवेश]

कोई स्त्री हो लगती है। अजगर की लपेट में स्त्री ! या फिर यह कोई जाल है कि जंजाल है कि इंदरजाल है।

दम० : (हाँफते, करुण और हताश स्वर में)—बचाओ !

व्याध : विपत्ति में पड़ी हुई है स्त्री ! ठहर जा मूर्ख स्त्री, ठहर जा ! जितना ही तू उस व्याल से लड़ेगी उतना ही वह तुझसे लिपटेगा। वह कसता जायेगा तुझे। साहस हो तुझमें तो उसके फण को कुचल। पर नहीं, तू ऐसा नहीं कर पायेगी।

[झपट कर अजगर के फण पर प्रहार करने का नाट्य करता है। अजगर गिर पड़ता है। दमयंती अपने को अजगर की पकड़ से मुक्त करती है।]

व्याध : देखा ! मेरा खड्ग काम आया ! सदा रखना चाहिये साथ में खड्ग, नहीं तो इस वन के हिंसक प्राणी इसी तरह ग्रस लेंगे, खा जायेंगे वे। (सहसा खड्ग दमयंती के सामने तानकर)—बता ! कौन है तू ? भूत है कि प्रेत है कि पिशाच है कि देवी है कि अप्सरा है ? कौन है बता—बता नहीं तो यह खड्ग तेरे दो टुकड़े कर डालेगा।

[दमयंती सहमी हुई खड़ी रह जाती है।]

व्याध : बोलती नहीं ? गूँगी है क्या ?

दम० : (प्रयत्नपूर्वक चैतन्य होकर)—तुमने मेरी रक्षा की भाई ! तुम्हारा बड़ा उपकार है मुझ पर।

व्याध : बोली ! बोल पड़ी ! मैं समझा यह कौन भूत प्रेत की लीला है या इंदरजाल है। अब बता—तू है कौन—कहाँ से आयी है—कहाँ जायेगी—बता !

[दमयंती स्तब्ध देखती रह जाती है।]

व्याध : फिर चुप हो गयी ? अरे तू स्त्री है कि प्रेत ? बोल ! बता—कुछ तो बोल !

[खड्ग नीचे पटक कर दमयंती को कंधे से पकड़ कर झकझोरता है। दमयंती मूर्च्छित हो कर उसके हाथों पर झूल जाती है।]

अरे···मूर्च्छित हो गयी ? (दमयंती को पास से देखता हुआ)—अद्भुत ! बड़ी सुंदर है ! कोई देवी है क्या ? लगता है भूख-प्यास से व्याकुल है। [दमयंती को झौंपड़ी के पास लाकर बिठा देता है। भीतर से पात्र में जल लाकर उसके मुख पर छींटे देता है। दमयंती आँखें खोलती है।]

व्याध : भूखी है ? कुछ खायेगी ?

[दमयंती स्वीकृति में सिर हिलाती है। व्याध एक टोकरी में फल लाकर देता है। दमयंती निश्चेष्ट रहती है। व्याध अपने हाथों से कौर उसके मुँह में देता है।]

व्याध : अब कुछ अच्छा लगा ?

दम० : हाँ !

व्याध : अब बता ! तू है कौन ? कहाँ से आयी है कहाँ जायेगी—

दम० : अब बताने को कुछ नहीं रहा। सब कुछ निःशेष हो गया।

व्याध : [ठठा कर हँसते हुए)—विचित्र स्त्री है तू ! कल एक विचित्र मनुष्य देखा। वह भी ऐसा ही घूम रहा था बावला। पूछा उससे कि भैया कौन है कहाँ से आया है तो यही कहा उसने—अब कुछ बताने को शेष नहीं रहा ! सब कुछ निःशेष हो गया। पहली बार सुनी इस तरह की भाषा ! हा-हा !

दम० : (सहसा उत्सुक होकर)—तुमने मेरे नल को देखा है ? बताओ—देखा है ?

व्याध : नल ? कौन नल ? मैंने किसी नल को देखा। कौन है नल ? क्या वह तेरा पुरुष है ?

दम० : वे मेरे पति हैं। वे ही होंगे। वे तुमसे मिले। फिर वे कहाँ गये ? बताओ।

व्याध : मुझे क्या पता कहाँ गया वह ! और वह तेरा पुरुष हो यह तो आवश्यक नहीं। वह एक काला और बौना पुरुष था। बड़ा कुरूप !

दम० : मेरे नल ऐसे नहीं हैं।

व्याध : वही तो कह रहा हूँ। वह तेरा पुरुष नहीं होगा। वह कोई पुरुष ही नहीं था जिसे मैंने देखा। कोई प्रेत रहा होगा। कह रहा था—देखते

हो—मैं बौना हो गया। कलियुग का अवतार हुआ है और मनुष्य बौना हो चुका है। (हँसता है)—प्रेत नहीं तो पागल होगा वह।

दम० : और क्या कहा उन्होंने ?

व्याध : कह रहा था—दो लोग डूब रहे हों तो उन्हें एक दूसरे का हाथ छोड़ देना चाहिये। एक दूसरे से अलग होकर वे शायद विपत् का सागर पार कर जायें, या कोई एक तो उनमें से पार करे।

दम० : यह कहा उन्होंने ? किधर गये हैं वे ? मुझे उनके पास जाना है। मैं पूछूँगी उनसे कि प्रेम और विश्वास के मूल्य की बलि देकर यों एकाकी रहना क्या उचित था ?

व्याध : अरे अब वह कहाँ मिलेगा ? मैंने पूछा भी था उससे कि कहाँ जायेगा —बता। कहने लगा—कहीं भी चला जाऊँगा—चेदिदेश चला जाऊँगा, कोसल चला जाऊँगा, बस विदर्भ नहीं जाऊँगा—

दम० : मैं खोज लूँगी उन्हें, चेदि देश या कोसल में जहाँ कहीं भी वे हों। (उठकर जाने लगती है।)

व्याध : अरे, अरे ! कहाँ चली ? अच्छी पागल है। सुन स्त्री। वह तेरा पुरुष नहीं था—कोई और था। और रहा भी हो वह तेरा पुरुष तो वह अब मिलेगा ? अब तक तो वह किसी सिंह या व्याघ्र का ग्रास बन चुका होगा। बड़ा भयंकर वन है यह। तू अकेली निकली, तो बचेगी नहीं। ऐसा कर, तू यहीं रह जा। मैं रख लूँगा तुझे। मैं तुझे सुरक्षा दूंगा; सुख दूँगा। आ ! (पकड़ने के लिये उसकी तरफ बढ़ता है।)

दम० : मुझे नहीं चाहिये यह सुरक्षा और सुख ! नीच ! तेरा यह साहस ! एक पग भी मत बढ़ना—

व्याध : अरे अब जायेगी कहाँ ?

(दमयंती खड्ग उठाकर अपनी ओर लपकते व्याध की छाती में उस खड्ग को भौंक देती है। व्याध तड़पता है। दमयंती रक्तरंजित खड्ग हाथ में लिये चल पड़ती है।)

॥ प्रासादिकी ध्रुवा ॥

हंसा जाय अकेला
फिरे हंसिनी उसकी
बनी बावली ढूँढ़े
उसको, वन वन डोले
अकेली, यह हँसिनी।

[पुरोहित का प्रवेश]

पुरो० : चलो स्नानादि से तो निपट लिये। बड़ी लंबी यात्रा है। यात्रा में सब कृत्य अव्यवस्थित हो ही जाता है।

दम० : (पुरो० को देखकर)—सावधान! आगे मत बढ़ना मेरी ओर! मैं अपनी रक्षा करना जानती हूँ।

पुरो० : (एक क्षण स्तब्ध रह कर उसे देखता रह जाता है, फिर घबराये और गद्‌गद् स्वर में) अपना खड्ग नीचे कर लो! माँ भवानी, मैं हाथ जोड़ता हूँ।

(दमयंती खड्ग नीचे कर लेती है। पुरोहित उसे गौर से देखता रह जाता है।)

पुरो० : यह रूप! यह तेज! और यह रक्तरंजित खड्ग धारे हुए कर में। साक्षात् माँ दुर्गा के दर्शन हो गये। संध्यावंदन से निवृत्त होकर लौट ही रहा था उधर सरोवर के तट से और मेरी पूजा के फल की तरह साक्षात् आप सामने! मुझे अपने चरणों का स्पर्श कर लेने दो माँ! बस एक बार चरण-स्पर्श।

(पास आकर पैरों पर झुकता है। दमयंती सहसा खिलखिला कर हँस पड़ती है।)

पुरो० : (रुक कर)—देवि! क्या मैं इस अट्टहास का कारण जान सकता हूँ?

दम० : तुम सारे पुरुष एक जैसे होते हो। स्त्री को या तो निर्जीव वस्तु समझ कर भोगना चाहोगे या देवी कह कर पूजना।

पुरो० : अपनी-अपनी आस्था की बात है। मुझे आप में माँ दुर्गा का स्वरूप प्रत्यक्ष दिखाई पड़ा। आपके दर्शन पाकर मैं धन्य हुआ। चरणों का स्पर्श तो मैं करूँगा ही। (फिर से झुककर दमयंती को प्रणाम करता है।) हाँ, अब बताइये आप कौन हैं, कहाँ से आयी हैं, कहाँ जायेंगी—

दम० : पहले आप अपना परिचय दें आर्य।

पुरो० : मैं सार्थवाह भृगुदत्त का कुल-पुरोहित हूँ। सार्थवाह विदर्भ से व्यापार करके वापस लौट रहे हैं। चेदिदेश के हैं हम लोग। यहीं पास में डेरा डाला है—सौ लोग हैं—सैनिक भी हैं, हस्ती और अश्व भी। चेदिदेश जाना है।

दम० : चेदिदेश? मुझे भी तो वहीं जाना है। मुझे साथ ले चलोगे? मैं अपने पति को खोज रही हूँ। वे चेदिदेश ही गये हैं।

पुरो० : मैं सार्थवाह भृगुदत्त से कहूँगा आपको साथ लेने के लिये। मेरी बात

वे टालेगें नहीं। आइये, डेरे पर ही चलें। यहाँ से बस अर्ध क्रोश की दूरी पर ही है हमारा डेरा। चलते हुए आपकी कथा सुनता जाऊँगा। आइये, इधर से आइये इधर।

[दमयंती पुरोहित के पीछे चलती है।]

॥ आंतरा ध्रुवा ॥

अंधकार में एक जस रही
यह अग्निशिखा धूम से घिरी।
नही चाहती है बन जाना
ढेरी बस वह एक राख की॥

कर प्रकाश यह एक चल रही
जीवनमय दीपशिखा
नहीं चाहती जो खो जाना
गहरे इस अँधियारे में॥

पुरो० : (रुक कर)—बस, यह रहा हमारा डेरा। बड़ी करुण कथा है माँ आपकी ईश्वर करें आपकी भेंट राजा नल से हो, आप सुख से रहें, सौभाग्यवती रहें। अद्‌भुत है आपका साहस और धर्य। आपके सुख के दिन आयेगें। लोग युगों तक आपको स्मरण करेंगे—पूजा करेंगे आपकी। आपकी कथा पर काव्य लिखे जायेगें। यह रही सार्थवाह भृगुदत्त की उपकार्या। मैं उन्हें सूचित करता हूँ। (जाने लगता है।)

दम० : रुकें आर्य ! (पुरो० रुक जाता है।) मैं नहीं चाहती कि मेरा वास्तविक परिचय यहाँ प्रकट हो। आप सार्थवाह से इतना ही कहें कि यह एक प्रोषितभर्तृका दुखियारी स्त्री है।

पुरो० : जैसी आपकी इच्छा। आप पहले मेरी उपकार्या में विश्राम करें। मेरी पत्नी भी वहाँ है।

(दोनों का प्रस्थान)

॥ पाँचवा अंक समाप्त ॥

।। छठा अंक ।।

(चेदिनरेश के अंतःपुर का उद्यान। वकुलावलिका और मधुकरिका अलग-अलग दिशाओं से आती हैं। मधुकरिका के हाथों में फूल हैं, वकुलावलिका के हाथ में आम्रमंजरी।)

मधु० : अरी वकुलावलिका ! कहाँ चली ? (उसके हाथ में आम्रमंजरी देख कर)—अरे ! कहाँ से मिल गयी यह बौर !

वकुला० : तोड़ी है मैंने ! सबसे पहले मैंने देखी रसाल की शाखा पर मंजरी !

मधु० : मुझे दे न ! राजकुमारी को बताऊँगी।

वकुला० : न ! आज मदन महोत्सव है। मैं पहले भगवान् कामदेव को पूजूँगी। (मधुकरिका के हाथों में फूल देख कर) कहाँ ले जा रही हो ये फूल ?

मधु० : क्या बताऊँ—सैरंध्री का कहीं पता ही नहीं चल रहा। सारा प्रमदवन छान लिया। राजकुमारी कहती हैं—माला गूँथना तो वही जानती है। उसी से गुथवा कर ला। नखरे देखो सैरंध्री के। न वह किसी के जूठे बर्तन छुए, न जूठन खाये न किसी के कुवचन सुने। उसे तो मान-सम्मान से रानियों की भाँति रखो। बस माला गूँथना औ वेणी सँवारना दो काम वह करेगी।

वकुला० : इन दो कामों में उसकी कोई तुलना भी तो नहीं कर सकती ! सुन ! सैरंध्री को मैंने अभी देखा तो था। गोपुर के पास किसी परदेशी ब्राह्मण से बातें कर रही थी।

मधु० : ब्राह्मणों को बुला-बुला कर राजकुल से जो भी आभूषण मिलते हैं सब दे देती है। अपने पति की खोज करवा रही है न उनसे।

वकुला० : वह ब्राह्मण पता नहीं क्या समाचार लाया था। सैरंध्री रो रही थी बहुत अधिक।

मधु० : मदन-महोत्सव के दिन रोना ! ईश्वर करे कोई अमंगल न हो।

(रदनिका का प्रवेश)

वकुला० : अरी रदनिका ! ऐसी घबराई-घबराई क्यों है ?

रद० : अरी कुछ सुना तुम लोगों ने ! वह सैरंध्री···

मधु० : अरे उसी की तो बातें कर रहीं थीं हम अभी। बता न···क्या हुआ उसको ? मैं तो कब से उसी को खोज रही हूँ।

रद० : (उत्तेजना से हाँफती हुई)—जा रही है वह।

वकुला० : सैरंध्री !

मधु० : कहाँ जा रही है ? कुछ बता तो !

रद० : अब कैसे बताऊँ ? बड़े आश्चर्य की बात है। सुनोगी तो विश्वास नहीं करोगी।

वकुला० : अच्छा अब तू पहेलियाँ बुझाना तो बंद कर !

रद० : वह सैरंध्री है न·····वे·····वास्तव में निषध देश की महारानी हैं वे !

वकुला० : चल हट। झूठी कहीं की। लगा रही है कुछ भी !

रद० : सत्य कहती हूँ। वे महारानी दमयंती हैं। राजा नल···उनके पति—द्यूत में सब हार गये। उनका कहीं पता नहीं। उन्हें ढूँढ़ती हुई वे यहाँ आयीं थीं·····

वकुला० : कितना रोमांचक है यह सब। और हम लोगों ने उन्हें दासी समझा।

मधु० : अरे मैंने तो पहले ही कह दिया था—कहा था न मैंने—अच्छा वकुला-वलिका तू बता—कहा था न मैंने ?

वकुला० : क्या ?

मधु० : यही—कि वे अवश्य कहीं की महारानी हैं। ऐसा रूप-रंग, ऐसा स्वभाव, ऐसा आचरण—और किसी का हो ही नहीं सकता ! कहा था न मैंने !

वकुला० : हुँह ! कहा था । बड़ी आयी कहने वाली ! (रदनिका से)--पर यह तो बता कि पता कैसे चली यह बात ?

रद० : एक ब्राह्मण आया है अभी विदर्भ देश से । महारानी दमयंती के पिता महाराज भीम को जब ज्ञात हुआ कि राजा नल द्यूत में सब राजपाट हार कर कहीं चले गये और बेटी का भी कहीं पता नहीं···तो वे उन्हें ढूँढ़वा रहे थे इतने दिनों से ।

(मल्लिका का प्रवेश)

मल्लिका : (हड़बड़ी में)—अरे तुम लोग यहाँ क्या कर रही हो ? भट्टिणी सब को बुला रही हैं ।

वकुला० : मल्लिका, तूने कुछ सुना ? वह सैरंध्री--

मल्लिका : हाँ, हाँ, उसी के लिये तो आयी हूँ । देवी दमयंती आज ही प्रस्थान करने को कह रही हैं । भट्टिणी यों तो अपनी भतीजी को ऐसे जाने नहीं देना चाहतीं, पर--

मधु० : क्या कह रही है ? क्या वे हमारी भट्टिणी की भतीजी हैं ?

मल्लिका : हाँ, और क्या ?

रद० : महारानी दमयंती ?

मल्लिका : हाँ उन्हीं का कह रही हूँ ! देवी दमयंती का !

वकुला० : पर वे भतीजी कैसे हो गयीं हमारी भट्टिणी की ?

मल्लिका : देख, दशार्ण देश के राजा सुदामा की दो पुत्रियाँ थीं—एक का विवाह हमारे महाराज वीरबाहु से हुआ, दूसरी का विदर्भ के महाराजा भीम से । इस तरह राजकुमारी सुनंदा और देवी दमयंती मौसेरी बहनें हुईं । हुईं कि नहीं ?

वकुला०, रद० : समझ गयीं हम ।

मल्लिका : तो फिर चलो देवी दमयंती के सौप्रस्थानिक का मंगल संभार रचाने ।

वकुला०, रद० : ए सुन, चर्चरी गाते हुए चलेंगे ।

मधु०, मल्लिका : क्यों नहीं, क्यों नहीं !

।। चर्चरी ।।

आओ मिल कर मङ्गल गायें
मदनमहोत्सव आज मनायें

बही आज यह सुख की धारा
जग उछाह में डूबा सारा ॥

(सबका प्रस्थान । प्रवेशक समाप्त ।)

[कोसल के राजा ऋतुपर्ण की मंदुरा (अश्वशाला) के बाहर एक शिलापट्ट पर बैठे बार्ष्णेय और भूमि पर बैठे बाहुक वेशधारी कलियुग का प्रवेश । बार्ष्णेय और बाहुक की बातचीत के बीच घोड़ों की हिनहिनाहट नेपथ्य से सुनाई देती है ।]

बाहुक : तो फिर मन नहीं लगा दादा तुम्हारा कुंडिनपुर में ? राजकुमार इंद्रसेन और इंद्रसेना को छोड़ कर यहाँ आ गये ।

बार्ष्णेय : हाँ भाई, तू कितनी बार पूछेगा यह बात ।

बाहुक : मेरी किस्से-कहानियों में बड़ी रुचि है न !

बार्ष्णेय : किस्सा जैसा ही लगता है अब सब कुछ ।

इन हाथों से खिलाया है मैंने बेटी दमयंती को····(हाथ से संकेत करता हुआ—जब वह इतनी-सी थी ! उसको उठाये हुए घूमता था इन्हीं कंधों पर ! ऐसे आँखें फाड़ कर क्या देखते हो ! विदर्भ के अंतःपुर का मुँह लगा सूत था मैं । युवक था—फिर भी रनिवास में जाने की अनुमति थी । और केवल रथचर्या ही नहीं सीखी है । पुराण, आख्यान सब गाता था—

बाहुक : गाते थे—तुम ? (हँसता है ।)

बार्ष्णेय : हँसता है ? तूने घोड़े हाँकना सीख लिया कि अपने आपको चक्रवर्ती राजा समझता है तू । अरे उस समय मेरा ऐसा गला था कि रानियाँ बुला-बुला कर आख्यान सुनाने का आग्रह करतीं । पचास वर्ष बिता दिये विदर्भ की सेवा में । राजकुमारी दमयंती को रथ पर भ्रमण कराने मैं ही ले जाता था । विवाह हुआ तो वे हठ करके ले गयीं मुझे अपने साथ पितृगृह । इतना विश्वास रखती थीं···उधर महाराज नल द्यूत में सब हार रहे थे उन्होंने मुझ से कहा दादा तुम्हें छोड़कर और कोई नहीं है जो बच्चों को कुंडिनपुर पहुँचा दे रात भर में—

बाहुक : हो सकता है वे स्वयं भी कुंडिनपुर पहुँच गयी हों···

बार्ष्णेय : क्या पता भैया ! कहाँ गये महाराज नल—और कहाँ गयी बेटी दमयंती···कभी किसी का जी न दुखाया होगा उसने और ये दिन

देखने थे उसको—विदर्भ से लौटकर निषध देश गया था···पर तब तक सब उजड़ चुका था वहाँ।

बाहुक : संभव है देवी दमयंती कुंडिनपुर पहुँच ही गयीं हों।

वार्ष्णेय : तू हर बार यही बात कहता है ! मैं जानता हूँ बेटी दमयंती को। वह पति का साथ छोड़ कर कहीं न जायेगी···

बाहुक : हाँ···दमयंती है ही ऐसी !

वार्ष्णेय : (एकदम से भड़क कर)—अरे किस तरह से बोल रहा है नीच सूत ! देवी का नाम इस तरह लेते तेरी जिह्वा कट कर गिर क्यों नहीं गयी ?

बाहुक : ओह···मुझ से भूल हो गयी दादा !

वार्ष्णेय : भूल हो गयी ! अरे तू कुलीन लोगों की सेवा करने योग्य कदापि नहीं है। पता नहीं कहाँ से तू चला आया यहाँ ! बस एक कारण से मैं तुझे सह लेता हूँ और महाराज ऋतुपर्ण भी—

बाहुक : अच्छा ? ऐसा कौन-सा कारण है ?

वार्ष्णेय : तू स्वयं नहीं जानता क्या मूर्ख ! तेरी अश्वविद्या और रथ संचालन ! संसार में किसी के पास ऐसी विद्या नहीं होगी, केवल एक व्यक्ति को छोड़ कर !

बाहुक : और वह व्यक्ति कौन है ?

वार्ष्णेय : महाराज नल। वे अप्रतिम सारथि हैं।

बाहुक : महाराज नल और सारथि ! क्या बात करते हो।

वार्ष्णेय : अरे मूर्ख। क्या राजा रथचर्या सीखते नहीं ? फिर महाराज नल का तो क्या कहना ! शालिहोत्र पूरा कंठस्थ है उन्हें ! अश्वों की ऐसी परख···किसी के पास नहीं। उनके हाथ का स्पर्श पा कर अश्व हवा हो जाते हैं। उनके साथ रह कर मैंने भी सीखी रथविद्या—पर वह बात आयी नहीं। हाँ तुझ में वही बात है। महाराज नल को छोड़ ऐसा सारथि कहीं नहीं देखा—तेरे जैसा !

बाहुक : महाराज नल तो अब इस संसार में हैं नहीं—तो मैं अद्वितीय सारथि हूँ। हो-हो ! (हँसता है।)

वार्ष्णेय : (तमतमा कर उठ जाता है)—नीच ! आगे एक शब्द भी बोला तो जिह्वा खींज लूँगा। क्या समझता है तू अपने आपको बोल। और अब कभी आना भी मत मेरी आँखों के आगे ! या फिर मैं ही तेरे

पास कभी बैठूंगा ही नहीं—ऐसे नीच सूत की संगत क्यों करूँ मैं ? (चल देता है।)

बाहुक : अरे दादा सुनो तो ! वह तो मेरे मुँह से निकल गया बस ! अवश्य ही जीवित होंगे महाराज नल ! (वार्ष्णेय उसकी बात अनसुनी कर के चला जाता है।) चला गया वार्ष्णेय ! बाहुक ! अब तुम इसी तरह निर्वासित और धिक्कृत जीवन बिताओ। अब कौन साथ देगा ?

[नेपथ्य से गीत ! बाहुक चौंक कर उत्कंठा से सुनता है।]

कोई बताये क्या करे वह
इक अभागिनी ऐसी नारी
वन में सोती हुई अकेली
पति से बिछुड़ गयी बेचारी।

वन वन भटके व्याकुल हो कर
प्रिय का पर जो ठौर न पाये
आधा आँचल लिये अकेली
क्या करे वह कोई बताये—

बाहुक : अरे यह कैसा गीत है ? (विकल हो कर, जिधर से गीत का स्वर आया है उधर दो तीन पग चलता है। नेपथ्य की ओर गायकों पर दृष्टि पड़ते ही)—सुनिये, रुकिये, रुकिये !

[तीन गायकों का प्रवेश]

गायक 1 : आपने हमें पुकारा क्या भाई ?

बाहुक : हाँ अभी आप एक गीत गा रहे थे—उधर राजपथ पर जाते हुए—

गायक 2 : हाँ, हाँ, गा रहे थे। तो ?

बाहुक : मैंने सुना आपका वह गीत। मुझे लगा कि··· (कहते-कहते रुक जाता है।)

गायक 1 : क्या लगा भाई तुम्हें ? निस्संकोच कहो। हम ठहरे सूत। जनता के आगे यही सब गाते-फिरते हैं। हमसे क्या संकोच ?

बाहुक : मुझे लगा कि वह गीत किसी ने किसी के लिये भेजा है। क्या ऐसा है ?

गायक 3 : हाँ ऐसा ही है भाई ! पर जिसे सुनाने के लिये यह गीत हम गाते फिरते हैं, वह नहीं मिला अभी तक।

गायक 2 : कहाँ-कहाँ नहीं गये हम ? गाँव-गाँव, नगर-नगर, गली-चत्वर मदिरालय, आपण, पर्वत, नदी के तट, वन·· सर्वत्र घूमते फिरे हम। महीनों से यही गीत गाते भटक रहे हैं यहाँ से वहाँ।

गायक 1 : और जिसे इस गीत का उत्तर देना है वह पता नहीं कहाँ मुँह छिपाये बैठा है।

गायक 2 : क्या आप बता सकते हैं कि कहाँ मिलेंगे वे महानुभाव, जिन्हें यह गीत संबोधित है ?

बाहुक : (अत्यन्त भावविह्वल हो जाता है, फिर अपने आप पर नियंत्रण रखता हुआ)—नहीं भाई मैं क्या जानूँ ?

गायक 3 : आप अपना परिचय तो दीजिये आप हैं कौन ?

बाहुक : मैं यहाँ चाकरी करता हूँ सूत का काम···बाहुक नाम है मेरा—

गायक 1 : सूत हैं आप ?

बाहुक : हाँ, सूत ही तो हूँ···

गायक 2 : अरे भाई सूत तो हम भी हैं। हम लोग जाति भाई हुए। हुए कि नहीं ?

गायक 1 : काम क्या करते हैं आप यहाँ ?

बाहुक : सारथि हूँ राजा का—

गायक 3 : अरे बड़ा ऊँचा पद पा गये हो भाई। हमें देखो गली-गली, गाँव-गाँव आख्यान गाते भटकते हैं—यही जीविका है।

गायक 2 : रथचर्या सीख लेते तो आज रथ पर चढ़ कर चलते···

बाहुक : ऐसा क्यों कहते हैं ? आप पुराण आख्यान सुनाते हैं, आप तो ऋषियों के समान पूज्य हैं।

गायक 1 : आप बड़े महानुभाव व्यक्ति हैं। सारथि होकर तो हमारी जाति के लोग हमें नीचा समझने लग जाते हैं। यायावरी वृत्ति है न हमारी !

बाहुक : अभी कहाँ से आ रहे हैं ?

गायक 3 : विदर्भ से आ रहे हैं हम लोग। कुंडिनपुर से—

बाहुक : (विचलित हो कर)—कुंडिनपुर ?···विदर्भ ?····

गायक 1 : (बाहुक को भरपूर दृष्टि से देखता हुआ)—ऐसे चौंक क्यों गये आप ? लगता है आपका कुछ संबंध रहा है विदर्भ से।

बाहुक : (हिचकता हुआ)—हाँ ! विदर्भ में मेरी ससुराल रही है।

गायक 2 : विदर्भ में ही ? विदर्भ में किस जनपद में ?

बाहुक : अ···समझ लीजिए कुंडिनपुर में ही ।

गायक 1 : कुंडिनपुर के तो सब सूत, चारणभाट, कुशीलव, नर्तक, मागध हमारे परिचित हैं । आप बताइये किस घर में सम्बन्ध है···?

बाहुक : क्या करियेगा जानकर··· आइये यहाँ बैठिये न आप लोग—(शिला-पट्ट दिखाता है ।)

गायक 1 : (गायक 2, 3 को साभिप्राय देखकर)—बैठ लें एक घड़ी । थक भी तो बहुत गये हैं यहाँ से वहाँ भटकते···

गायक 2, 3 : ऐसा ही करते हैं । (तीनों बैठ जाते हैं ।)

गायक 1 : आप भी तो बैठिये ।

बाहुक : आप अतिथि हैं । अतिथि को आसन देना तो धर्म है । मैं आपके लिये अर्घ्य, मधुपर्क कुछ लाऊँ···मंदुरा के पीछे उधर कक्ष है मेरा—

गायक 1 : (हँसकर) रहने दो भाई । हमारे लिये क्या अर्घ्य और क्या मधुपर्क ? हम कोई ब्राह्मण हैं क्या ?

बाहुक : मैं तो आपको ब्राह्मण के ही समान पूज्य समझता हूँ । आप लोग पौराणिक हैं ।

गायक 2 : बस भैया तुम्हारे मीठे बोल से ही स्वागत हो गया ।

गायक 3 : और समय भी कहाँ है ? इस समय ऐसे काम से निकले हैं कि जब तक सिद्धि न मिल जाये रुकने का आदेश नहीं है ।

बाहुक : अच्छा ? ऐसा कौन सा काम है ?

गायक 1 : काम तो यही है—आख्यान-उपाख्यान गा गा कर सुनाना—

बाहुक : कौन कौन से आख्यान गाते हैं आप लोग ?

गायक 1 : कई आख्यान गाते हैं—हरिश्चंद्र शुनःशेप का गाते हैं, उर्वशी पुरूरवा का गाते हैं, अहल्या का भी गाते हैं । नये आख्यान भी रचते हैं ।

बाहुक : अच्छा ? कोई नया आख्यान रचा ?

गायक 2 : रच रहे थे पर अधूरा रह गया वह तो ।

बाहुक : किसका आख्यान रच रहे थे ?

गायक 3 : देवी दमयंती का—

बाहुक : (चौंक कर)—देवी दमयती ? ···कौन देवी दमयंती ?

गायक 2 : अरे कुंडिनपुर में ही तुम्हारी ससुराल है और देवी दमयंती को नहीं जानते ? विचित्र व्यक्ति हो। देवी दमयंती विदर्भ के राजा भीम की पुत्री हैं न !

बाहुक : (उद्विग्न स्वर में)—पर वे तो···वे तो···अभी हैं न !

गायक 1 : हाँ हाँ ! वे हैं। जीवित हैं वे।

बाहुक : (आश्वस्त होकर) अच्छा···अच्छा—जीवित व्यक्तियों पर भी आख्यान उपाख्यान रचते हैं आप लोग ! पर अधूरा क्यों रह गया आपका वह आख्यान ?

गायक 1 : कुछ न पूछो भाई···बड़ी करुण कथा है।

बाहुक : अच्छा···?

गायक 2 : हम लोगों ने आख्यान रचा देवी दमयंती के स्वयंवर और निषध देश के महाराज नल से उनके विवाह तक का—

गायक 3 : राजा नल को जानते हो या नहीं। नहीं पूछोगे —कौन से राजा नल ?

बाहुक : सुना है मैंने उनका नाम। फिर ?

गायक 1 : हम लोग वह आख्यान गा-गा कर सुनाते थे लोगों को। पर इधर बड़ी दारुण दुर्घटना हो गयी देवी दमयंती के जीवन में। द्यूत में सब हार गये राजा नल और जंगल में अकेली सोती छोड़कर चले गये देवी दमयंती को। तब से उनका कहीं पता नहीं और देवी दमयंती उन्हें खोज रही हैं। आगे क्या होगा कुछ पता नहीं। अब यहाँ तक आख्यान सुनायें तो जनता पूछेगी न कि आगे क्या हुआ।

गायक 2 : और आगे क्या हुआ हम क्या बता सकते हैं ? नल का कोई वृत्तांत हमें ज्ञात ही नहीं—

बाहुक : देवी दमयन्ती का वृत्तांत ज्ञात है क्या आप लोगों को ?

गायक 2 : अरे कुछ न पूछो भाई। बड़ा दुःख झेलना पड़ा उन लोगों को। जंगल में अजगर ने अपनी लपेट में ले लिया, उसके चंगुल से एक व्याध ने छुड़ाया। वह व्याध भी पापी था। उससे बचकर वे भागीं—एक सार्थ के साथ हो लीं, जो चेदिदेश जा रहा था, क्योंकि उन्हें लगा कि राजा नल चेदि देश गये होंगे—

बहुक : (उत्कंठा और विषाद के साथ) फिर क्या हुआ ?

गायक 3 : उस सार्थ पर रात्रि में वन्य गजों के यूथ ने आक्रमण कर दिया। सार्थ के सब लोग मारे गये—

बाहुक : (और भी उत्कंठा और चिंता के साथ)—फिर।

गायक 1 : (बाहुक को साभिप्राय देखता हुआ)—उस दुर्घटना में दो ही लोग बचे—देवी दमयन्ती और सार्थवाह भद्रगुदत्त के पुरोहित। दो ही लोग बचे उस दुर्घटना में।

बाहुक : फिर ?

गायक 1 : पुरोहित के साथ देवी दमयन्ती जा पहुँचीं किसी तरह चेदि देश। मैले फटे हुए वस्त्र और आधा फटा हुआ आँचल था उनका। भूख और प्यास की मारी थीं और उससे अधिक भाग्य की मारी थीं। उसके आगे की बात पद्य में सुनो—

(तीनों समवेत स्वर में गाते हैं।)

चेदिदेश में फिरे अकेली
देवी दमयंती, दमयंती।
कितनी विपदा उसने झेली
कोई संग न कोई सहेली।

फिरे अकेली डगर डगर में
दमयंती वह नगर नगर में
लोग उसे इक पागल मानें
रानी है वह, वे क्या जानें ?

पत्थर उस पर फेंके बालक
फिर उसे सतायें ढीठ युवक
एक विपत से रही जूझ जो
पागल उसको बना दिया यों

[बाहुक दोनों हाथों से मुँह छिपा कर रोता है। गायक सहसा अपना गाना रोक लेते हैं।]

गायक 1 : क्या हुआ भैया बाहुक ? बाहुक, क्या बात हो गयी ?

बाहुक : कुछ नहीं। आप लोगों ने ऐसी करुण कथा सुनायी कि ··

गायक 2 : हमें पता न था भैया तुम इतने कोमल मन वाले हो।

गायक 3 : ऐसे करुण आख्यानों को जब हम गाते हैं तो अश्रु तो निकल ही पड़ते

हैं लोगों के। (गायक 1, 2 से)—स्मरण है मिथिला में दो वर्ष पूर्व जानकी हरण का आख्यान सुनाया था सामंत वटेश्वरदत्त के यहाँ—कैसी रोयीं थीं उनके अन्त:पुर की स्त्रियाँ।

गायक 2 : फूट-फूट कर रोयीं थी भाई ! रोती भी जायें और आख्यान सुनना भी चाहें।

गायक 1 : ऐसे ही होते हैं लोग। दूसरे के दुख को आख्यान के द्वारा बाँट लेना चाहते हैं। इस धरती पर बस इतना ही सुख है भाई कि हम दु:ख का वरण कर सकते हैं और झेल लेते हैं दूसरे का दु:ख भी···अपना दु:ख भी···(बाहुक से)—सुनो भैया बाहुक ! अब स्वस्थ हो जाओ। मुख प्रक्षालित कर लो। इसके आगे की कथा ऐसी दुखदायी नहीं है। देवी दमयंती अब चेदि देश से अपने पिता के घर आ गयी हैं।

बाहुक : कहाँ कुंडिनपुर ? पहुँच गयीं वे ?

गायक 2 : हाँ भैया पहुँच गयीं। चेदि देश में अर्धविक्षिप्त सी वे राजधानी के राजमार्गों पर भटक रहीं थीं। बच्चे पत्थर फेंकते और ताली बजाते उनके पीछे चल रहे थे। प्रासाद के गवाक्ष से चेदि देश की महारानी ने उन्हें देख लिया। महारानी को लगा यह तो कोई कुलीन नारी लगती है। उन्होंने देवी दमयंती को राजप्रासाद में बुलवाया।

गायक 3 : बस, तब से तीन मास तक देवी दमयंती चेदि देश के अंत:पुर में दासी बन कर रहीं।

बाहुक : दासी बन कर ?

गायक 1 : हाँ चेदि देश की महारानी उनकी मौसी होती हैं, पर उन्होंने अपना परिचय नहीं दिया उनको। और बारह वर्ष से चेदि की महारानी ने देवी दमयंती को देखा भी न था, वे उन्हें उस स्थिति में कैसे पहचानतीं ? देवी दमयंती ने कहा—मैं एक प्रोषित भर्तृका नारी हूँ—अपने पति को खोज रही हूँ। और राजा नल की खोज कराती रहीं वे वहाँ रह कर। उधर महाराज भीम खोज करा रहे थे उनकी। तो···

बाहुक : वे अपने पिता के पास पहुँच गयीं यह अच्छा ही रहा।

गायक 2 : पहुँच गयीं पर उनके जी को विश्राम नहीं मिला न ! उन्होंने ही तो भेजा है हमें राजा नल की खोज के लिये। सभी देशों में उन्होंने सूतों की टोलियाँ भेजी हैं। हम लोग नगर-नगर में, डगर-डगर में, गली

चौराहों पर, हाट में, आपण में, मदिरालयों में और राजसभाओं में सर्वत्र जा-जा कर यह गीत सुनाते हैं और प्रतीक्षा करते हैं कि कोई उत्तर देने वाला सामने आयेगा।

गायक 3 : पर अभी तक तो वह सामने न आया।

(एक क्षण का विराम)

गायक 1 : अच्छा भैया बाहुक ! अब प्रस्थान करें हम।

(तीनों उठते हैं।)

बाहुक : (हिचकता हुआ) एक प्रार्थना है मेरी—

गायक 1 : हाँ, हाँ, कहो !

बाहुक : आप लोग मुझे भी अपना वह गीत सुनायेंगे ? यों ही सुनने का मन हो रहा है।

तीनों गायक : हाँ-हाँ क्यों नहीं ?

(गाते हैं)

कोई बताये क्या करे वह
इक अभागिनी ऐसी नारी
वन में सोती हुई अकेली
पति से बिछुड़ गयी बेचारी।

वन-वन भटके व्याकुल हो कर
प्रिय का पर जो ठौर न पाये
आधा आँचल लिये अकेली
क्या करे वह, कोई बताये···

[गीत सुनते हुए बाहुक विह्वल होने का नाट्य करता है]

गायक 1 : अच्छा भाई बाहुक ! अब तो विदा दो हमें।

बाहुक : (हाथ जोड़ कर)—बहुत अच्छा लगा आप लोगों से मिल कर। मैंने आप लोगों को बड़ा कष्ट दिया। वस्तुतः बात यह है कि···

गायक 1 : हाँ, हाँ, कहो !

बाहुक : (साँस भर कर)—जाने भी दीजिये।

गायक 2 : कहो न। हम तो तुम्हारे लिये स्वजन ही हैं।

गायक 3 : स्वजनों के आगे तो मन के द्वार खोल देना चाहिये भाई !

गायक 1 : मन की बात कही न गयी तो भीतर ही भीतर सालती है वह ।

बाहुक : कुछ नहीं···आपने अभी कहा न कि मनुष्य अपने दुःख का वरण स्वयं करता है । तो मैं सोच रहा था कि क्यों वरता है मनुष्य दुःख को ?

गायक 1 : यहाँ कौन हैं तुम्हारे घर में ?

बाहुक : यहाँ ? यहाँ तो मैं एकाकी ही रहता हूँ । इतना एकाकी कि स्वयं से भय लगता है···मैं इतना एकाकी पाता हूँ अपने को कि अपने आप से भी अलग बस छाया भर रह गया हूँ एक । पर अब यह छाया भी छूटती लगती है—

गायक 1 : मनुष्य को अपने आप को सँभालना तो पड़ता ही है भाई ।

बाहुक : अच्छा···आपका पथ प्रशस्त हो ।

तीनों : अच्छा भाई—ईश्वर तुम्हें दुःख से त्राण दे ।

[तीनों चल देते हैं । बाहुक कुछ कहने के लिये हिचकता हुआ उन्हें जाते देखता है । सहसा अपना हिचक को दबा कर उन्हें पुकार उठता है ।]

बाहुक : सुनिये । एक क्षण रुकिये आप लोग !

(तीनों गायक ठहर जाते हैं ।)

गायक 1 : हमें पुकारा क्या भाई ?

बाहुक : हाँ, कुछ कहना है मुझे इस गीत के लिये जो आपने अभी गाया—

गायक 1 : हाँ, हाँ, कहो !

बाहुक : जिन्होंने यह गीत यहाँ से वहाँ गा-गा कर सुनाने के लिये आपको भेजा है, उनसे एक बात कहेंगे ?

गायक 2 : देवी दमयंती से ?

गायक 1 : कहने योग्य बात हुई तो क्यों नहीं कहेंगे ? तुम बताओ तो !

बाहुक : उनसे कहियेगा कि अच्छे कुल की नारी विषम दशा में पड़ कर भी अपने को खो नहीं देती वह सारा दुःख भीतर ही भीतर सह लेती हैं । यह सह ले जाना एक दिन बड़ी शक्ति का पुंज बना देता है उसे···

गायक 1 : और कुछ ?

बाहुक : बस इतना ही—

गायक 1 : तुम्हारी बात का मर्म तो नहीं पकड़ सके मित्र ! पर देवी दमयंती से जाकर तुम्हारी बात कहेंगे अवश्य । क्या पता उनके व्यथित चित्त को यह संदेश ही कुछ समाधान दे जाये ।

गायक 2 : कोसल देश ही हमारी इधर की यात्रा का अंतिम पड़ाव था । अब तो कुंडिनपुर ही पहुँचेंगे । डेढ़ मास लग जायेगा पहुँचने में ।

[बाहुक स्तब्ध खड़ा उन तीनों को जाते हुए देखता है । तीनों गायक जाते हुए गाते हैं ।]

विषम दशा में पड़ कर नारी
मिटने नहीं स्वयं को देती
भीतर ही भीतर वह सारी
दुख की धारा है पी लेती ।

दुख ही इक दिन है बन जाता
दुखियारे का एक सहारा
शक्ति उसी में वह है पाता
नहीं दुःख से जो है हारा ।

[सबका प्रस्थान । छठा अंक समाप्त ।]

।। सातवाँ अंक ।।

[महाराज भीम का अंतःपुर। छठे अंक के अंत में प्रस्थित गायक 1, 2, 3 का प्रवेश]

गायक 1 : कौन है इधर-सूर्यामुख प्रसाद के चौथे द्वार पर ?

प्रतीहारी : मैं हूँ यहाँ। कौन हो तुम लोग ?

गायक 1 : हम लोग हैं कुशी-लव।

प्रतीहारी : कुशी लव ? कौन से कुशी लव ? कहाँ के कुशी लव ?

गायक 2 : अरे भइ कुशीलव हैं सूत जाति के। और कुशीलवों का नाम क्या ठिकाना क्या ? घूमते हैं ठौर-ठौर। गाते और सुनाते हैं आख्यान।

गायक 3 : यह तो हमारी जीविका ठहरी। तुम सुनना चाहो तुम्हें सुना दें।

प्रतीहारी : (सक्रोध)—अरे तो तुम यहाँ अंतःपुर के द्वार तक कैसे चले आये ? तीन ड्यौढियाँ लाँघ कर तुम यहाँ तक चले आये और किसी ने रोका नहीं ? मैं द्वारपालों को दंड दिलवाऊँगी—सब निठल्ले हैं। सावधान ! आगे मत बढ़ना। यह देवी दमयंती का प्रासाद है।

गायक 1 : देवी दमयंती का ? तब तो काम बन गया। देवी दमयंती से ही तो मिलना है।

प्रती० : चुप ! यह दुस्साहस ! जिह्वा काट कर फेंक दूँगी एक शब्द भी आगे कहा तो।

गायक 2 : (जनांतिक में)—अरे यह तो बड़ी चंडी है।

गायक 3 : हाँ भाई। क्या तेज और कैसा क्रोध !

गायक 1 : होना ही चाहिये भाई। अंतःपुर की प्रतीहारी जो ठहरी। (प्रतीहारी से)—क्रोध मत कीजिये देवि ! हम यहाँ तक चोरी से तो नहीं आये। कंचुकी महाराज की अनुमति ले कर आये हैं, तभी तो द्वारपालों ने हमें प्रवेश करने दिया।

प्रती० : पर आये किसलिये ?

गायक 2 : कहा तो—देवी दमयंती के दर्शन करना है। उन्हें कोई आख्यान उपाख्यान सुनायेंगे और पुरस्कार पायेंगे—और क्या ?

प्रती० : देवी दमयंती क्या इस तरह किसी से मिलती हैं ? मूर्खो !

गायक 1 : क्रोध मत करो भद्रे ! देवी दमयंती से निवेदन करो—कोसल देश हो कर शक्तिभद्र, मणिभद्र और समंतभद्र आये हैं। हो सकता है वे हम से कुछ आख्यान-उपाख्यान सुनना चाहें।

प्रती० : तुम लोग कहते हो तो सूचित कर देती हूँ देवी को···यों वे इस तरह किसी से मिलती नहीं हैं।

(जाती है।)

गायक 2 : (गाता हुआ)—कोई बताये क्या करे वह···

नायक 3 : चुप ! इस गीत को यहाँ गाने की आवश्यकता नहीं है।

गायक 2 : क्या करें···यह गीत ऐसा मुँह से लग गया है। महीनों से इसको प्रति दिन सौ-सौ बार गाया होगा।

गायक 1 : अब मेरा मन कहता है अब इसे कभी गाना नहीं पड़ेगा।

(प्रतीहारी का पुनः प्रवेश)

प्रती० : (अत्यधिक संभ्रम में)—अरे सुनो,-सुनो ! देवी दमयंती आप लोगों को बुला रही हैं। इधर से आओ इधर से (तीनों गायक प्रतीहारी के साथ परिक्रमा करते हैं। पर्यंक पर बैठी दमयंती का प्रवेश)।

प्रती० : ये रहीं देवी। जाइये आप लोग।

तीनों गायक : (दमयंती के निकट जा कर)—जय हो देवी दमयंती की। जय हो निषध देश की महारानी की।

दम० : स्वागत है आप लोगों का। विजया, मधुपर्क ला !

प्रतीहारी : जो आज्ञा भट्टिणी ! (जाती है ।)

गायक 2 : उपचार रहने दें देवि ! हम सूतों के लिये अर्घ्य क्या, मधुपर्क क्या ?

दम० : कहाँ से आ रहे हैं आप लोग ?

गायक 1 : देवि, विदर्भ से चल कर सौराष्ट्र और मालव तथा दशार्ण देशों में घूमे हम । कोई गांव नहीं छोड़ा, ठाँव नहीं छोड़ा । नगर-नगर गये, डगर-डगर चले । आपणों में, मदिरालयों में, राज सभाओं में, वनों में, नदी तीरों पर जा-जा कर हमने यह गीत गाया ।

(तीनों गाते हैं ।)

कोई बताये क्या करे वह
इक अभागिनी ऐसी नारी
वन में सोती हुई अकेली
पति से बिछुड़ गयी बेचारी

वन-वन भटके व्याकुल हो कर
प्रिय का पर जो ठौर न पाये
आधा आँचल लिये अकेली
क्या करे वह कोई बताये···

गायक 2 : पर कोई उत्तर देने वाला सम्मुख न आया ।

गायक 1 : अंत में हम पहुँच गये कोसल देश । राजा ऋतुपर्ण की राजसभा में पहुँचे । वहाँ भी यह गीत गाया । गीत गा कर जैसा कहने आये थे, कहा कि जिसका यह गीत है उसे इसका उत्तर चाहिये । किन्तु कोई कुछ नहीं बोला । राजा के प्रासाद के बाहर आ कर राजमंदुरा के सामने राजमार्ग पर यही गीत गाते हुए जा रहे थे कि राजा के सारथि बाहुक ने हमें बुला लिया···

दम० : अच्छा···फिर ?

गायक 1 : उसने हमसे हमारा सब वृत्तांत पूछा । आपके विषय में प्रच्छन्न उत्सुकता से सब जानना चाहा । आपकी कथा हम सुना रहे थे, तो उसकी आँखें भर आयीं ।

गायक 2 : नहीं, रोने ही लग गया था ।

दम० : आपने उनको भी वह गीत सुनाया ?

गायक 1 : गीत तो वह पहले सुन ही चुका था । पर जब हम उससे विदा ले कर चल पड़े तो उसने हमें पुकारा और संकोच के साथ कहा कि एक बार

फिर वह गीत सुना दीजिये। गीत सुनते हुए वह फिर बहुत व्याकुल हो गया। फिर बोला कि जिन्होंने यह गीत भेजा है, उनसे हमारा एक संदेश कहना—

दम० : (उत्सुकता से)—क्या संदेश दिया उन्होंने ?

तीनों गायक : (गाते हैं)—

विषम दशा में पड़ कर नारी
मिटने नहीं स्वयं को देती
भीतर ही भीतर वह सारी
दुख की धारा है पी लेती।

दुख ही इक दिन तब बन जाता
दुखियारे का एक सहारा।
शक्ति उसी में वह है पाता
नहीं दुःख से जो है हारा।

दम० : यह कहा उन्होंने ! (सँभल कर)—अच्छा, कैसा था उस सारथि का रूप-रंग ?

गायक 1 : कृष्ण वर्ण का, बौना और कुरूप था वह—

दम० : नहीं ! ऐसा कैसे हो सकता है !

गायक 1 : बाहुक से विदा ले कर हम राजा के वयोवृद्ध सारथि वार्ष्णेय से मिले—

दम० : वार्ष्णेय ?

गायक 1 : हाँ देवी। राजकुमार इंद्रसेन और राजकुमारी इंद्रसेना को यहाँ कुंडिनपुर में छोड़ कर वार्ष्णेय कोसल जा कर रहने लगे हैं · कोसल नरेश ऋतुपर्ण की सेवा में हैं वे।

दम० : हाँ, ज्ञात हुआ था मुझे। कुंडिनपुर में मन नहीं लगा वार्ष्णेय का ··· वह यहाँ से वापस विदर्भ गया था···पर निषध तो तब तक निःशेष हो चुका था हमारे लिये—तो कोसल में है वार्ष्णेय !

गायक 1 : हाँ।·····निषध से चल कर वह कोसल रुक गया।·····और वहीं है तब से।

दम० : अच्छा···क्या बात हुई वार्ष्णेय से !

गायक 1 : उसने बताया कि कोसल नरेश ऋतुपर्ण की सेवा में वह आया उसके

तीन महीने बाद बाहुक वहाँ पहुँचा था। अश्वविद्या में परम प्रवीण है बाहुक और महाराज ऋतुपर्ण बहुत सम्मान करते हैं उसका इसीलिये।

दम० : ओह !

गायक 2 : एक बात और है भट्टिणी !

दम० : क्या ?

गायक 2 : बाहुक ने वहाँ सबसे कह रखा है कि वह एकाकी है—कोई बंधु नहीं है उसका कहीं। और हमसे कहा कि उसकी तो ससुराल ही विदर्भ में है।

गायक 3 : विदर्भ में भी इसी कुंडिनपुर में ही !

गायक 1 : और हमने उससे पूछना चाहा उसके घर परिवार के विषय में, पर टाल गया वह —

दम० : (एक क्षण कुछ सोचती रह जाती है। फिर पुकार कर) विजया !

(प्रतीहारी का प्रवेश)

प्रती० : आज्ञा दे भट्टिणी।

दम० : कोशाध्यक्ष भागुरि से कह कर इन गायकों को यथेष्ट पुरस्कार दिला। और माँ से कहना मुझे उनसे कार्य है।

गायक : (सब एक साथ)—भट्टिणी की जय हो।

[प्रतीहारी के साथ जाते हैं। प्रतीहारी एक क्षण बाद लौट कर आती है।]

प्रती० : भट्टिणी की जय हो ! महारानी आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं।

दम० : मुझे माँ के प्रासाद ले चल।

प्रती० : इधर से आइये देवि इधर से !

[दोनों परिक्रमा करती हैं।]

प्रती० : (रुक कर)—यह रहा महारानी का प्रासाद। प्रवेश करें देवि ! खड़ी हैं।

पर्यंक पर बैठी महारानी प्रवेश करती है पास में दो चेटियाँ खड़ी हैं।

महा० : (दमयंती से)—आ बेटी आ ! इधर बैठ !

[दमयंती पास पहुँच कर प्रणाम करती है। महारानी उसे पर्यंक के अर्धभाग पर बिठा लेती है।]

दम० : माँ मुझे आप से एकांत में कुछ कहना है ।

महा० : (चेटियों तथा प्रतिहारी से)—जाओ तुम लोग ।

(चेटियाँ तथा प्रतीहारी का प्रस्थान)

महा० : हाँ बेटी ! अब बता क्या बात है ।

दम० : माँ ! पिता या मेरे भ्राताओं को और किसी को भी इस बात की कानोंकान सूचना न मिले ।

महा० : नहीं मिलेगी । तू बता तो करना क्या है !

दम० : आज ही अपने विश्वस्त ब्राह्मण को कोसल देश भेज दीजिये । वहाँ के राजा ऋतुपर्ण को संदेश देना है कि बहुत खोजने पर भी महाराज नल का कहीं पता नहीं चला इसलिये देवी दमयंती दूसरा स्वयंवर कर रही है । राजा ऋतुपर्ण को स्वयंवर में आने का निमंत्रण दे कर जिस दिन ब्राह्मण उनके पास पहुँचे उसके अगले दिवस की ही स्वयंवर की तिथि बता दे ।

महा० : तू करना क्या चाहती है बेटी । दमयंती का दूसरा स्वयंवर ! कोई सुनेगा तो क्या कहेगा ।

दम० : कोई सुनेगा ही क्यों ? जो ब्राह्मण जायेगा उसे छोड़ कर विदर्भ में और किसी को ज्ञात नहीं होगी यह बात !

हा० : पर इससे होगा क्या ?

मदम० : आप जानती तो हैं—मैं अपने पति की खोज में हूँ—

महा० : ऐसा करने से वह प्रकट हो जायेगा ? पता नहीं कहाँ छिपा है वह ? मैं नहीं जानती थी कि वह इतना दुर्बल निकलेगा ।

दम० : पुरुष जहाँ दुर्बल हो जाता है वहाँ स्त्री को बल अपने आपसे पाना होता है माँ !

[नेपथ्य से शंखध्वनि, फिर प्रासादिकी ध्रुवा गायी जाती है ।]

चढ़ी दुपहरी तपती काया
जाने कहाँ खो गयी छाया ।
विकल हँसिनी पुष्कर तट पर
खोज रही है अपना सहचर ।।

महा० : मध्याह्न हो गया । आ भोजन ग्रहण करें । फिर जैसा तू कहेगी वैसी व्यवस्था करेंगे ।

[दोनों का प्रस्थान । सातवाँ अंक समाप्त ।]

।। आठवाँ अंक ।।

[राजा ऋतुवर्ण की मंदुरा के सामने का दृश्य। वार्ष्णेय का अपटीक्षेप के साथ प्रवेश]

वार्ष्णेय : बाहुक ! अरे ओ बाहुक ! (इधर उधर देखकर) भोर से ही कहीं अता-पता नहीं इसका। दिन प्रति दिन इसकी असावधानी बढ़ती ही जा रही है। राजरथ के अश्वों का चारा पानी तक नहीं हुआ ! (फिर पुकारता है)—अरे ओ बाहुक !

(चेट का प्रवेश)

चेट : काहे बाहुक को बुला-बुलाकर हलकान हो रहे हो दादा ! बाहुक तो गया।

वार्ष्णेय : गया ? कहाँ गया ?

चेट : अरे तुम्हें पता नहीं क्या ? विदर्भ देश गया है अभी-अभी। महाराज को पहुँचना है कल तक विदर्भ देश !

वार्ष्णेय : क्या कह रहे हो शिवदास ?

चेट : सच कह रहे हैं दादा ! बड़ी विचित्र बात हो गयी। तुम तो रह चुके हो निषध देश में ?

वार्ष्णेय : रहा हूँ भाई ! हुआ क्या है ?

चेट : अरे वहाँ की जो रानी रहीं न—क्या तो नाम रहा उनका—

वार्ष्णेय : देवी दमयंती !

चेट : हाँ, यही नाम रहा ! देवी दमयंती ! स्वयंवर रचा रही हैं अपना दूसरी बार !

वार्ष्णेय : (एक क्षण चकित उसे देखता रह जाता है)—क्या ? यह झूठ है ।

चेट : अचरज हो रहा है न ! यही उसने भी कहता रहा—बाहुक ! अरे हम ही तो बुलाने गये रहे उसको भिनसारे । महाराज बोले कि जा बाहुक को बुला कर ले आ, देवी दमयंती का स्वयंवर है कल, हमें कुंडिनपुर पहुँचना है आठ पहर के भीतर ! बाहुक को छोड़कर और कौन है जो एक दिन में हजार कोस दूर पहुँचा दे कह रहे थे महाराज कि कहना बाहुक से बड़ा पुरस्कार देंगे । हमने जा के बाहुक से बताया । कहा—चलो महाराज टेर रहे हैं । तो वह भी ऐसे ही आँखें फाड़-फाड़ के देखने लगा । फिर बोला—यह झूठ है यह नहीं हो सकता । हम बोले भैया राजा की आज्ञा है, सच हो चाहे झूठ हमें तुम्हें क्या ? राजा का काम पूरा कर देव, तो पुरस्कार लेव ।

वार्ष्णेय : अरे कह किसने दिया कि दमयंती का स्वयंवर है ?

चेट : कुंडिनपुर से एक ब्राह्मण आया था । राजमुद्रा से अंकित पत्र दिया उसने और कहने लगा कल स्वयंवर है पधारिये महाराज । पूछा कि ब्राह्मण देवता कल स्वयंवर है आज आ रहे हो यह कैसे, सो बोला—मार्ग में अस्वस्थ हो गया था राजन् ! महाराज कहने लगे कि देखो किसी तरह पहुँच जायँ तो पहुँच ही जायँ । सो ले गया है बाहुक उनको !

वार्ष्णेय : राजरथ के अश्व तो यहीं हैं—उनका तो चारा-पानी भी नहीं हुआ !

चेट : बाहुक अपनी पसंद के घोड़े ले गया है । उसने तो बोल दिया था पहले ही महाराज से कि हमें कोई पुरस्कार तो चाहिये नहीं और पहुँचा देंगे आपको कल प्रातः ही कुंडिनपुर, पर घोड़े हमारी पसंद के जुतेंगे रथ में । महाराज बोले भैया मंदुरा में दो हजार घोड़े हैं, जो पसंद हो ले ले, पर तुरत ले चल । सो बाहुक ने अपने मन के घोड़े छाँटे ! घोड़े भी कैसे छाँटे उसने ? एकदम मरियल ! महाराज तो देखते ही बोले—अरे इन घोड़ों से तुम एक दिन में एक हजार कोस पार करोगे, ये तो दो योजन में ही गिर पड़ेंगे ! अब बाहुक तो मुँहफट है ही । बोला—तो फिर आप जानें आपका काम । रास छोड़कर अलग जा खड़ा हुआ वह भी । और उल्टे महाराज उसके हाथ जोड़ें । कहें—भैया, तुम ठहरे अश्वों के पारखी । भूल हो गयी हम से । अब कुछ न बोलेंगे । तब

चला है बाहुक। पर दादा, क्या रथ हाँका है उसने। अरे एक छिन में तो रथ आँख से ओझल। ऐसा सर्रा कर भागा कि बस तीर छूटा जैसे।

वार्ष्णेय : देवी दमयंती का स्वयंवर···ऐसा हो कैसे सकता है···

चेट : हम लोगों को क्या करना है ? देवी दमयंती वहाँ की रानी रहीं अब यहाँ की हो जायें सो हो जायें, हैं कि नहीं ? चलो, बाहुक नहीं है सो चारा-पानी निपटाना है राजरथ के अश्वों का—

वार्ष्णेय : अभी तू जा भाई शिवदास। मेरा जी ठीक नहीं, थोड़ा विश्राम करूँगा। (चेट का प्रस्थान।) चला गया बाहुक भी ! बहुत झगड़ता था मैं उससे। अब पता नहीं क्यों उसके लिये मन में स्नेह उमड़ रहा है। लग रहा है अब उससे कभी भेंट नहीं होगी।

(धीरे-धीरे प्रस्थान करता है। विष्कंभक समाप्त।)

[तीव्र गति से भागते रथ परें आरूढ़ होने का नाट्य करते बाहुक और ऋतुपर्ण का प्रवेश]

ऋतु० : कैसी विकट गति है रथ की ! लगता है इस गति के आगे भवकंपित पेड़ स्वयं दुबक कर पीछे हटते जा रहे हैं।

रथ्या स्वयं घबराकर आगे बढ़-बढ़ रथ को स्थान दे रही है। कोई दृश्य स्थिर नहीं, सब कुछ कंपित सब कुछ गतिमान। कोई दृश्य दूर नहीं रह पाता, कोई दृश्य पास नहीं पाता। (उत्तरीय गिराकर) —रोको बाहुक, रोको !

बाहुक : क्या हुआ राजन् ! (रथ धीमा करने का नाट्य करता है।)

ऋतु० : मेरा उत्तरीय नीचे गिर गया।

बाहुक : उसे उठाने के लिये रथ पीछे मोड़ना होगा।

ऋतु० : तुम एक क्षण रोक दो रथ। मैं एक क्षण में उसे उठा लाता हूँ दौड़कर।

बाहुक : जिस स्थान पर आपका उत्तरीय गिरा, वहाँ से हम दो योजन आगे निकल चुके।

ऋतु० : क्या सचमुच ? तब जाने दो। (बाहुक रथ तेज करने का अभिनय करता है।) अद्भुत है बाहुक तुम्हारी रथविद्या ! इस पृथ्वी पर ऐसा सारथि और कौन होगा ? यह विद्या मुझे दे दो तो मुँहमाँगा पुरस्कार दूँ।

बाहुक : मुझे किसी पुरस्कार की अपेक्षा नहीं है महाराज !

ऋतु० : बड़ा गौरव है तुम्हें अपनी रथ विद्या का ! एक विद्या मेरे पास भी है, जो अब इस पृथ्वी पर किसी के पास न होगी ।

बाहुक : कौन-सी विद्या है आपके पास !

ऋतु० : गणित और अक्षविद्या !

बाहुक : ये तो दो विद्याएँ हैं ।

ऋतु० : नहीं ! यही तो तुम्हारी भूल है । गणित यदि आ गया तो पाँसे अपने आप वश में हो जाते हैं । द्यूत में आज तक मुझे कोई परास्त नहीं कर सका । गणित के कारण पासे मेरे संकेत पर नाचते हैं···

बाहुक : जब कि पासों ने मुझे नचा दिया ।

ऋतु० : तुम्हें ? (हँसकर) अच्छा ! मेरी गणना की चमत्कार देखोगे ? वह विभीतक का पेड़ देखते हो आगे —? तनिक रोको रथ ! (बाहुक रथ रोकने का अभिनय करता है ।)

ऋतु० : हाँ, यही पेड़ । (एक क्षण गणना का अभिनय कर)—इस विभीतक के नीचे गिरे पत्तों की संख्या एक सौ एक है । इकतालीस फल नीचे गिरे हुए हैं । इसकी सारी शाखाओं पर पाँच लाख पत्तियाँ और दो हजार पंचानवे फल हैं ।

बाहुक : असंभव ! आप इतने कम समय में सारी गणना कर ही कैसे सकते हैं ? मैं विश्वास नहीं कर सकता । मैं इसके फल गिनकर देखूँगा । (रथ से नीचे उतरने का अभिनय करता है ।)

ऋतु० : अरे नहीं, नहीं बाहुक ! ऐसा मत करना । तुम गिनने बैठ जाओगे फल और पत्तियाँ, तो बहुत समय लगा दोगे । किसी और समय तुम मेरी गणना की परीक्षा कर सकते हो—अभी नहीं । अभी समय कहाँ है ?

बाहुक : मेरे लिये तो बस अभी समय है महाराज !

ऋतु० : बाहुक ! तुमने कहा था कि कल प्रातः तक तुम मुझे कुंडिनपुर पहुँचा दोगे ।

बाहुक : उसके लिये मैं वचनबद्ध हूँ । यदि आपको मुझ पर विश्वास न हो, तो कुंडिनपुर पहुँचने की आप अन्य कोई व्यवस्था कर सकते हैं ।

ऋतु० : मैं यहाँ क्या व्यवस्था करूँगा भाई ! मैं तो सर्वथा तुम्हारे अधीन हूँ। अच्छा तुम पेड़ पर के फल गिन लो—पूरे दो हजार पंचानवे हैं।

(बाहुक गिनने का अभिनय करता है।)

बाहुक : पूरे दो हजार पंचानवे। आपकी गणितविद्या प्रामाणिक है। आप मुझे अपना गणित और अक्षविद्या दीजिये, मैं आपको अपनी रथविद्या और अश्वविद्या दूँगा।

ऋतु० : विनिमय करोगे ? चलो यही सही। दमयंती का स्वयंवर हो जाय, फिर हम एक दूसरे की शिष्यता स्वीकार करेंगे।

बाहुक : स्वयंवर के पश्चात् नहीं महाराज ! अभी यहीं,—इसी समय—हम एक दूसरे को अपनी विद्याएँ दे दें।

ऋतु० : पागल हुए हो ? हमारे पास समय कहाँ है ?

बाहुक : मेरे पास तो अभी समय है बस। फिर नहीं।

ऋतु० : मुझे धोखा देना चाहते हो बाहुक ? चाहते हो कि मैं दमयंती के स्वयंवर में न पहुँच पाऊँ ?

बाहुक : आपने स्वयंवर में उपस्थिति के दाव पर मुझे पासा बनाया है। आप कुशल द्यूतकार हैं, तो आपका दाव विफल नहीं होगा।

ऋतु० : मेरी द्यूतकला देखना चाहते हो ? यहाँ पासे तो हैं नहीं। पर इन्हीं विभीतक के फलों से मैं तुम्हें दाव खेलना सिखाता हूँ।

[रथ से उतरता है और बाहुक को सामने बिठाकर मौन मुद्राओं में पासे फैंकना बताता है। नेपथ्य से आक्षिप्ति का ध्रुवा गायी जाती है।]

कलियुग आज हताश हुआ है
सोते नर में जो बसता है
जागे नर के आगे अब वह
कलियुग आज परास्त हुआ है।

ऋतु० : संध्या हो गयी। उधर सरोवर है। मैं संध्या वंदन करके आता हूँ। तब तक तुम भी घोड़ों का चारा-पानी कर दो।

[ऋतुपर्ण का प्रस्थान। बाहुक घोड़ों के आगे चारा डालने का नाट्य करता है।]

[कलियुग का प्रवेश]

बाहुक : (चौंककर) कौन ? कौन हैं आप ?

कलि० : मैं कलियुग हूँ—तुम्हारा प्रतिरूप ।

बाहुक : मेरा कोई प्रतिरूप नहीं । मैं बाहुक हूँ । एक बौना मनुष्य । एक सारथि बस । अपने ही पाप की अग्नि में झुलस कर काला हो चुका हूँ मैं ।

(दूसरी ओर से नल का प्रवेश)

बाहुक : (नल को देखकर)—और आप कौन हैं ?

नल : मैं राजा नल हूँ बाहुक । मुझे पहचाना नहीं ? मैं तुम्हारा सही स्वरूप हूँ । तुम मात्र छाया हो ।

बाहुक : नहीं, मैं किसी नल को नहीं जानता । जाओ तुम दोनों मुझे अपना काम करने दो ।

नल : (कलियुग को देखकर)—और तुम कौन हो भद्र !

कलि० : मुझे नहीं पहचानते महाराज ! इतने समय से मैं आपके साथ ही तो हूँ । मैं कलियुग ।

नल : कलियुग ?

कलि० : हाँ । मैं कलियुग । मैं आपका पीछा करता रहा बारह वर्ष । अब मैं आपके साथ रहता हूँ । इस बाहुक के भीतर हम दोनों रहते हैं । मैं आपसे मिला था न उस समय—जब आपने दमयंती को छोड़ा था—

नल : तुम···थे वहाँ ? तुमने ऐसा क्यों किया ?

कलि० : (भय से काँपता हुआ)—नहीं···इस तरह मत देखिये मुझे । मुझे रहने दीजिए वहाँ । मुझे कहीं तो रहने का स्थान चाहिये ।

नल : तुमने ऐसा क्यों किया कलियुग ! तुम मेरे पीछे क्यों लगे थे ?

कलि० : क्योंकि मैं आपका सर्वनाश चाहता था । पर आह ! मैं अपने को ही सताता रहा । आपके भीतर रह कर मैंने इतना ताप झेला अब मुझसे सहा नहीं जाता महाराज ! मुझे अभय दीजिये—

नल : तुमने ऐसा क्यों किया ? क्या बैर था तुम्हारा मुझसे ? बताओ नहीं तो मैं तुम्हें शाप दे दूँगा ।

कलि० : नहीं मुझे शाप मत दीजिये । मैं तो पहले ही जल रहा हूँ दमयन्ती के शाप से । मैं उसे पाना चाहता था । पर वह तो आपको चाहती थी । उसकी निष्ठा अटूट थी । मैं उसे नहीं तोड़ सकता था । तब मैंने चाहा कि मैं आपको भीतर से तोड़ दूँ । मैंने आपके भीतर प्रवेश

किया। यह क्या किया मैंने। मैं स्वयं को ही तोड़ रहा था। अब मैं ऐसा क्षत-विक्षत हूँ—परास्त हूँ पूरी तरह। मैं दमयन्ती को सह नहीं सकता था। नहीं झेल सकता था उसका तेज। इसीलिये उसे वन में अकेली सोती छोड़कर पलायन की प्रेरणा दी मैंने आपको। पर मेरे भीतर का दाह··· वह कैसे मिटता ? अब मुझसे सहा नहीं जाता यह दाह।

नल : तुमने मुझे कष्ट दिया है कलियुग ! पर मैं तुम्हें शाप नहीं दूँगा। देवता तुम्हारे इस दाह का शमन करें।

कलि० : देवता ? कहाँ हैं देवता ? देवताओं का समय बीत चुका, वे अतीत हो गये। देवताओं को भूल जाइये महाराज। वे अब नहीं आयेंगे। आपको शाप की आग में झुलसते इस कलियुग में जीना होगा··· वे इंद्र, अग्नि, वरुण और यम—जिन्होंने आपको वरदान दिये थे—कहाँ हैं वे ? क्या हुआ उनके वरदानों का—इस संकट में वे काम आये ?

नल : इस संकट का वरण मैंने ही किया था। और देवताओं के वरदान भी मेरे साथ रहे और देवता भी, क्योंकि उन्हें मैंने ही रचा था।

कलि० : क्या कहा ?

नल : हाँ, वे मेरे ही तो रूप थे—इंद्र भी, अग्नि भी, वरुण भी और यम भी। मैं ही उन्हें रचता हूँ—और फिर से रचूँगा मैं उन्हें, क्योंकि मैं मनुष्य हूँ। मैं रच सकता हूँ· मैं अपना विश्व बना सकता हूँ—तुम्हें भी तो मैंने ही रचा है। अब मैं तुम्हें कुचल सकता हूँ। मैं नष्ट कर सकता हूँ तुम्हें।

कलि० : ऐसा मत कहिये महाराज ! आपके इस विश्व में मेरे लिये कहीं स्थान नहीं मैं कहाँ रहूँगा ?

नल : ठीक है, तुम मेरे इन अश्वों में रहोगे। क्योंकि मैं इन अश्वों को हाँक सकता हूँ क्योंकि मैं रथविद्या और अश्वविद्या जानता हूँ·· तुम द्यूत के उन पासों में रहोगे, जो अब मेरे संकेत पर नाचेंगे क्योंकि मैं गणित जान गया हूँ—

कलि० : तो फिर यही हो। मैं शास्ता बनना चाहता था, पर अब मैं शासित हूँ। मैं जाता हूँ महाराज ! मैं आपका अनुगंता बन कर रहूँगा। (जाता है।)

बाहुक : यह सब क्या है। कैसा प्रपंच है यह।

नल : मुझे तुम्हारे इस रूप में रहकर अपने आपको पहचानना था। एक दिन संभव है मैं लौट आऊँ। तब तक के लिये तुम मुझे अपने पीछे रहने दो।

[बाहुक के पीछे जा कर प्रस्थान करता है।]

[बाहुक घोड़ों को थपथपाने का नाट्य करता है। दूसरी ओर से ऋतुपर्ण का प्रवेश]

ऋतु० : अरे बाहुक ! क्या अभी तक अश्वों का चारा-पानी नहीं हुआ ?

बाहुक : अश्व तैयार हैं राजन् ! आप रथ पर विराजिये।

[दोनों रथ पर चढ़ने का नाट्य करते हैं। बाहुक रथ हाँकने का अभिनय करता है।]

ऋतु० : दमयंती को पा सकूँगा ऐसी तो आशा नहीं थी मुझे पर स्वयंवर की इस यात्रा में अब मैं तुमसे रथविद्या सीखूँगा—यह बड़ा लाभ रहा—

बाहुक : देवी दमयंती को पाने की आशा नहीं है आपको ? फिर स्वयंवर में जा किसलिये रहे हैं ?

ऋतु० : मैं उस स्त्री को देखना चाहता हूँ, जो यह साहस कर रही है। पति के रहते दूसरा स्वयंवर।

बाहुक : देवी दमयंती के पति अब कहाँ हैं ?

ऋतु० : महाराज नल ! कहीं तो होंगे भाई। संभव है छद्म वेश में कहीं रह रहे हों। बड़ी विचित्र बात है यह दमयंती का दूसरा स्वयंवर रचाना···

बाहुक : इसमें विचित्रता क्या है महाराज !

ऋतु० : तुम्हें इसमें कोई विचित्रता नहीं लगती ?

बाहुक : कोई स्त्री कहाँ तक प्रतीक्षा कर सकती है जब पति अपना दायित्व भूल कर उसे एकाकिनी छोड़ कर चला जाय।

ऋतु० : (हँसता हुआ)—अरे बाहुक। तुम्हारे तो विचार भी ऐसे ही विचित्र हैं जैसे विचित्र तुम स्वयं। अच्छा ठीक दमयंती के स्वयंवर के समय महाराज नल कहीं से आकर प्रकट हो जायें, तो दमयंती क्या करेगी ? बताओ।

बाहुक : महाराज नल को चाहिये कि अब वे प्रकट न हों, यदि वे कहीं जीवित हों भी···।

ऋतु० : अच्छा, मैंने तुम्हें गणित और अक्षविद्या सिखाई है, तुम मुझे रथ विद्या सिखाओ अब।

बाहुक : ऐसा ही करते हैं। (दोनों का प्रस्थान)

॥ आठवाँ अंक समाप्त ॥

।। नवम अंक ।।

[नेपथ्य से रथ के चलने की पास आती ध्वनि । उसके साथ ही प्रावेशिकी ध्रुवा गायी जाती है ।]

रथ का कैसा घोष सुना यह
मन आकुल होता है रह रह
नभ में सहसा घिर आये घन
नीचे उतरा उनका गर्जन ।

(चेटी का प्रवेश)

चेट : (आकाशभाषित में)—प्रतिहार ओ प्रतिहार ? कौन है उधर गोपुर की प्रतिहार भूमि में ? अरे इतने ऊँचे स्वर में चिल्ला रही हूँ—सुनते नहीं हो, बहरे हो क्या ? (सुनने का अभिनय कर)—'क्या कहा ? रात भर पहरा देते देते अभी झपकी लगी थी और जगा दिया ?' अच्छा, एक तो प्रतीहार भूमि में सो रहे हो और ऊपर से हम पर अभियोग । हम भी देवी दमयंती की प्रधान दासी हैं । अभी जाकर बताऊँगी उनसे तो ज्ञात हो जायेगा इस उद्दंडता का फल । (पुनः सुनने का अभिनय कर) —क्या कहा ? क्षमा करो देवी ! मेरा स्थानापन्न प्रतीहार अभी नहीं आया···मेरे नियोग का तो समय समाप्त हो चुका ।' चलो क्षमा किया । (सुनकर)—क्या कहा ? तो फिर काम बताओ ? हाँ काम ? अरे काम तो भूल ही गयी ! किस काम से आयी थी ? क्या बताऊँ काम इतना रहता है कि मन कभी-कभी अस्त-व्यस्त हो ही जाता

है । बात यह है प्रतीहार कि देवी दमयंती आज प्रातः से ही कुछ अव्यवस्थित-सी हैं । हाँ स्मरण आ गया । देवी दमयंती ने ही तो भेजा था ! किसलिये भेजा था ? कहा था उन्होंने पता करके आ यह रथ का घोष कैसा है ? पता नहीं क्यों इतनी उद्विग्न थीं अभी अभी । तो सुनो यह किसका रथ प्रविष्ट हुआ है अभी गोपुर से ? (सुनकर) – क्या कहा ? कोसल के राजा ऋतुपर्ण का ? कोसल के राजा यहाँ अचानक कैसे ? (सुनकर)—क्या कहा ? मंत्रियों के द्वारा सत्कार और कुशल-प्रश्न करने पर उन्होंने बताया कि बस महाराज भीम का अभिवादन करने आये हैं ?' इतनी दूर से अभिवादन करने के लिये चले आये ? कितने अच्छे हैं कोसल के राजा ! मैं जाकर देवी दमयंती को बताती हूँ । (प्रस्थान । प्रवेशक समाप्त ।)

[अपने प्रासाद में उद्विग्न टहलती दमयंती का प्रवेश]

दम० : मेघ के गर्जन के जैसा वही गंभीर घोष रथ का ! मैं पहचानती हूँ इसे । और कोई सारथि हो तो रथ चलने पर ऐसे मृदंगमांसल स्वर नहीं उठते । तो सूत का कार्य कर रहे हैं वे । मैं सूत की भार्या बन कर भी रह लेती उनके साथ । पर·· (केशिनी का प्रवेश)—क्या हुआ केशिनी !

केशिनी : देवी की जय हो ! जैसा देवी का आदेश था महाराज ऋतुपर्ण के सारथि को उसी कोठरी में ठहराया जहाँ कहीं जल न था । छूँछे पात्र रखे थे । मैं छिपकर देख रही थी । सारथि ने एक पात्र उठाया और उसके छूते ही वह जल से भर गया ।

दम० : अच्छा ? फिर ?

केशिनी : कोठरी में कहीं अग्नि नहीं थी । भोजन पकाने की शेष सामग्री थी । सारथि ने स्नान किया, ध्यान किया । फिर रथ से लाकर सूखा घास चूल्हे में रखा·· और चमत्कार हो गया । अग्नि अपने आप जल उठी ।

दम० : सच कह रही है ?

केशिनी : हाँ देवी मैंने अपनी आँखों से देखा । वह कोई विचित्र पुरुष है—कोई ऐंद्रजालिक है—

दम० : फिर तू उससे मिली ?

केशिनी : हाँ जब वह भोजन कर चुका तो मैं उसके पास गयी और जैसा आपने बताया था उससे कुशल प्रश्न करके कहा कि हमारे यहाँ जो गायक

कोसल गये थे उनके द्वारा आपने जो संदेश दिया था देवी दमयंती को उसे वे फिर सुनना चाहती हैं।

दम० : (उत्सुकता से)—फिर क्या हुआ ?

केशिनी : क्या बताऊँ भट्टिणी !

दम० : कुछ कहा उसने ?

केशिनी : बड़ी अनोखी बात कही। कहने में भी लज्जा आती है।

दम० : केशिनी, संकोच की आवश्यकता नहीं। जो कहा हो उसने, बता।

केशिनी : मैं तो वहीं लताड़ देती उस मुए को। पर आपने कहा था कि और कुछ मत कहना—

दम० : बता भी तो ऐसा कह क्या दिया उसने ?

केशिनी : कह रहा था अब उस संदेश की आवश्यकता नहीं है देवी दमयंती को। वे अपने लिये निर्णय ले सकती हैं। मैंने पूछा—ऐसा क्यों कहते हो सूत ! तब बोला—देवी दमयंती दूसरा स्वयंवर जो रचा रही हैं। यह कह दिया उसने !

दम० : यह कहा उन्होंने ?

केशिनी : (आश्चर्य से दमयंती को देखती हुई)—जी भट्टिणी ?

दम० : (लंबी साँस छोड़कर)—अच्छा एक काम और कर ! तू राजकुमार इंद्रसेन और बेटी इंद्रसेना को लेकर जा उस सारथि के पास। फिर शीघ्र आकर मुझे बताना—क्या हुआ।

केशिनी : क्या कहूँ उन दोनों से ?

दम० : किसी से कुछ भी नहीं कहना है। बस दोनों को उस सारथि के पास ले जाना है। वे दोनों तो प्रातः से उत्सुक हैं उससे मिलने को—मुझसे उसी के विषय में बात कर रहे थे—

केशिनी : ठीक है ले जाती हूँ दोनों को सारथि के पास। (जाती है। नेपथ्य से आंतरा ध्रुवा गायी जाती है।)

अंत नहीं है संशय का
इस असमंजस का भय का।
आया है क्षण निर्णय का

(केशिनी का पुनः प्रवेश)

दम० : क्या हुआ ?

केशिनी : भट्टिणी, मैं लेकर गयी राजकुमार और राजकुमारी को उस सारथि के पास। उन्हें देखकर उसकी आँखों में अश्रु आ गये। अंक में भर लिया राजकुमार को। राजकुमारी के शीश पर हाथ फेरा। कहने लगा—मेरे भी इतने ही बड़े दो बच्चे हैं--एक लड़का, एक लड़की। इन दोनों को देखकर उनकी स्मृति हो आयी। मैंने पूछा—कहाँ हैं तुम्हारे बच्चे ? तो उसने डबडबाई आँखों से कहा—क्या बताऊँ ?

दम० : (एक क्षण सोचने के बाद)—मुझे उस सारथि के पास ले चल।

केशिनी : (आश्चर्य से दमयंती को एक क्षण स्तब्ध देखती रह जाती है) आपको ? उसके पास ?

दम० : हाँ मुझे। क्यों ऐसे आश्चर्य से क्या देख रही है।

केशिनी : कुछ नहीं भट्टिणी। उसे तो मंदुरा के पास की एक कोठरी में ही ठहरा दिया था। आपका वहाँ जाना—

दम० : यह तेरी चिंता का विषय नहीं है।

केशिनी : भट्टिणी की जैसी आज्ञा। आइये भट्टिणी इधर से आइये इधर से !

[दोनों परिक्रमा करती हैं। बाहुक का प्रवेश]

केशिनी : भट्टिणी, यह रहा वह सारथि।

बाहुक : (दमयंती को देखकर चौंककर)—तुम···आप यहाँ ?

दम० : केशिनी, तू जा !

केशिनी : जो आज्ञा भट्टिणी ! (प्रस्थान)

दम० : (बाहुक को गहरी दृष्टि से देखकर)—मेरे यहाँ आने में कुछ अनौचित्य हुआ ?

बाहुक : आप विदर्भ के महाराज की पुत्री हैं। एक सूत के आवास पर आपका आना उचित नहीं है।

दम० : आपने अभी कहा था कि मैं अपने लिये निर्णय लेने में समर्थ हूँ···। अब आप मेरे निर्णय में अनौचित्य देख रहे हैं।

बाहुक : वह बात मैंने दूसरे प्रसंग में कही थी।

दम० : (सहसा फूट पड़ती है)—यह आपको क्या हो गया महाराज ? आप इस रूप में—

बाहुक : मुझे पहचान ही लिया तुमने। मेरे लिये शोक मत करो देवि ! तुम यहाँ से जाओ। अभी मुझे यहाँ और कोई नहीं जानता। तुम स्वयंवर के लिये स्वयं को प्रसाधित करो। यह कैसा रूप बना रखा है ?

दम० : (तीव्र स्वर से)—किसका स्वयंवर—कैसा स्वयंवर महाराज ?

बाहुक : (शांत स्वर में) तुम्हारा ही तो । तुम दूसरा विवाह करने जा रही हो न !

दम० : आप समझते हैं मैं ऐसा कर सकती हूँ ? क्या अभी भी आप समझ नहीं पाये कि स्वयंवर की वार्ता एक छल है—

बाहुक : समझ तो गया था उसी समय जब यहाँ पहुँचकर स्वयंवर की कोई तैयारी नहीं देखी और महाराज ऋतुपर्ण को इस बात से उद्विग्न पाया कि स्वयंवर की मिथ्या वार्ता के द्वारा उन्हें यहाँ बुलाने का क्या प्रयोजन है ।

दम० : आप तो प्रयोजन समझ रहे हैं न—क्या अब भी आप समझते हैं कि मैं कर सकती थी ऐसा ?

बाहुक : कैसा देवि !

दम० : यही—जैसा आपने मेरे विषय में सोचा—फिर से विवाह की बात—सोच भी सकती थी क्या मैं ?

बाहुक : सोचना नहीं चाहिये था क्या तुम्हें ?

दम० : (आहत भाव से)—मुझे ? पर क्यों ?

बाहुक : इसलिये कि दांपत्य की मर्यादा पहले मैंने तोड़ी । उसके बाद तुम्हें अधिकार हो जाता है कि तुम मुझे त्याग कर दूसरा सहचर चुन सको जो अधिक मर्यादा और गरिमा—

दम० : नहीं ! यह आप नहीं बोल रहे हैं—कोई और बोल रहा है आपके भीतर से ।

बाहुक : यह मैं ही बोल रहा हूँ देवि । इतनी यंत्रणा झेलने के बाद मैं उस छाया से मुक्त हो सका जो मुझे तुमसे दूर ले गयी थी ! वह कलियुग की छाया थी—

दम० : मैं जानती थी—

बाहुक : जानती थीं तुम । तभी तो तुम्हारे शाप से तिल-तिल जलता रहा मेरे भीतर कलियुग । वह रथ में जुते अश्व की तरह मुझे हाँकना चाहता था । अब मैं उसका सारथि हूँ मैं उसे चला सकता हूँ । उसकी छाया से मुक्त मैं सारथि बाहुक तुम्हारे सामने प्रस्तुत हूँ—चाहे तो मुझे स्वीकार करो, चाहो अस्वीकार । यह तुम्हारा अधिकार है ।

दम० : मुझे बाहुक नहीं अपना वही नल चाहिये जिसका मैंने वरण किया था ।

नल : मेरा यह रूप ! यह भी स्थायी नहीं है देवि ! बाहुक भी मेरी एक छाया ही है। इसे भी हटाना होगा। (जाता है और नल के रूप में पुनः प्रवेश करता है।)

दम० : (नल की ओर बढ़ती हुई)—महाराज !

नल : (दमयंती की ओर बढ़कर)—देवि !

[अपटीक्षेप से केशिनी का प्रवेश। दोनों को देखकर स्तब्ध खड़ी रह जाती है। फिर सँभलकर]

केशिनी : भट्टिणी !

दम० : (केशिनी को देखकर, संभ्रम में)—क्या है केशिनी ?

केशिनी : वे ··वे···(नल को देखकर रुक जाती है।)

दम० : क्या हुआ बता न !

नल : डरने की आवश्यकता नहीं भद्रे ! मैं नल हूँ—इस राजकुल का जामता।

केशिनी : महाराज नल की जय हो ! भट्टिणी की जय हो। मैं यह कहने आयी थी कि महाराज ऋतुपर्ण सारथि बाहुक को खोजते हुए इधर ही आ रहे हैं—

दम० : सारथि बाहुक अब यहाँ कहाँ है ?

[नेपथ्य से—बाहुक ! कहाँ हो बाहुक !]

नल : इधर आइये राजन् !

[ऋतुपर्ण का प्रवेश। नल और दमयंती को देखकर चकित खड़ा रह जाता है। फिर ठठा कर हँस पड़ता है।]

ऋतु० : लगता है स्वयंवरा ने अपना खोया वर फिर से पा लिया।

दम० : (ऋतुपर्ण से)—मैं आपकी अपराधिनी हूँ महाराज। स्वयंवर की वार्ता के द्वारा मैंने आपको वृथा कष्ट दिया—

ऋतु० : यह मेरा सौभाग्य है देवि ! राजा नल से आपके मिलन का हेतु बन पाना।

(नल से)—इतना कष्ट आपने क्यों उठाया राजन् ! आपके एक संकेत पर तो विदर्भ और कोसल की सारी श्री निछावर हो जाती !

नल : उतना कष्ट उठाकर मैंने बाहुक को पहचाना है महाराज ऋतुपर्ण। वह मेरे साथ था—मेरे भीतर—पर मैं उसे पहचानता कहाँ था।

ऋतु० : चलिये आपको अक्षविद्या मिली और मुझे रथविद्या। और मैं आपका का क्या प्रिय करूँ।

नल : दमयंती के अतिरिक्त मुझे और कुछ अभीष्ट नहीं है। हां इतना और हो—

॥ भरतवाक्य ॥

समय का रथ चहुँदिश फिरे
सात अश्व हैं जिसमें जुते
रात और दिन इसके पहिये
बारह महीने हैं चक्र के अरे।

रौंदता हुआ निरंतर सबको
समय का जो रथ जो फिरता है।
कथा दमयंती की जन-जन को निर्भय करे
समय के रथ पर चढ़ सकने का
सबके मन में साहस भरे

• •

दमयंती नाटक की राष्ट्रीय नाट्यविद्यालय, दिल्ली तथा अन्य अनेक स्थानों पर प्रख्यात रंगकर्मी ब० ब० कारंत के निर्देशन में कई प्रस्तुतियाँ हो चुकी हैं। यह नाटक साहित्य कला परिषद् दिल्ली द्वारा पुरस्कृत भी हुआ है। पुराकथा की नयी अर्थविच्छिति के साथ प्रस्तुति के साथ सार्थक नाट्यानुभव के विलक्षण संयोग के कारण भी यह नाटक नवे दशक की एक उल्लेख्य कृति है।

'दमयंती' के लेखक राधावल्लभ त्रिपाठी अब तक कई मौलिक नाटकों की रचना तथा संस्कृत नाटकों के हिन्दी अनुवाद कर चुके हैं। हिन्दी में एक उपन्यास और तीन कहानी संग्रहों के अतिरिक्त उनकी शोध और समीक्षा की कई पुस्तकें प्रकाशित हैं।

●